कुमारदास कृत जानकीहरण महाकाव्य - एक समालोचनात्मक अ

विश्वविद्यालय की

डी-फिल्० (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

2002
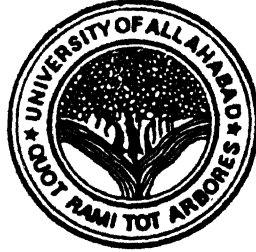
निर्देशिका
प्रो0 मृदुला त्रिपाठी
विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

गिरीश प्रसाद मिश्र
प्रस्तुतकर्त्ता
गिरीश प्रसाद मिश्र
एम0ए0 (संस्कृत)

संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद (उ०प्र०) २००२

प्राक्कथन

विद्या के पावन मन्दिर में अध्ययन की प्रारम्भिक घड़ियों में ही मेरे हृदयभूमि में साहित्य के प्रति रूझान का नन्हा सा अंकुर प्रस्फुटित हो गया था। समय के साथ-साथ मेरा यह लगाव तीव्र से तीव्रतर होता गया। साथ ही मेरे अध्ययन का दायरा भी विस्तृत होता गया। इसी अवधि में साहित्याकाश में अपनी अभिराम छटा बिखेरते हुए विभिन्न विधाओं में मुझे मंहाकाव्य ने सर्वाधिक प्रभावित किया।

एम०ए०. कक्षा में अध्ययन करते समय अपने परम पूज्य गुरुजनों के श्री चरणों में ही शोध की उत्कृष्टता का बोध हुआ था। उन्नीस सौ तिरानबे में विश्वविद्यालय से एम०ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त कर लेने पर शोध करने की वही इच्छा बलवती हो उठी।

प्रातः स्मरणीया प्रो० मृदुला त्रिपाठी जी के श्री चरणों में यह कार्य करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। त्रिपाठी ने मेरे लिए सर्वथा अपरिचित "कुमारदास कृत जानकी हरण का समालोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोध कार्य करने को कहा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में "जानकी हरण" महाकाव्य उपलब्ध नहीं था अतएव प्रो० त्रिपाठी जी

ने गंगा नाथ झा शोध संस्थान में पुस्तक अन्वेषित करने का निर्देश दिया। सौभाग्य से वहाँ यह महनीय कृत उपलब्ध हो गई।

इस प्रकार कुमारदास कृत "जानकीहरण" महाकाव्य के प्राप्त हो जाने पर त्रिपाठी जी के चरणों में बैठकर शोध कार्य प्रारम्भ हो गया।

मेरी शोध निर्देशिका प्रो० मृदुला त्रिपाठी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय की सत्प्रेरणा, स्नेहिल व्यवहार तथा आत्मीयता से पोषित हो मेरे शोध प्रबन्ध का नन्हा सा पौधा पुष्पित तथा पल्लवित होकर हरित तरुवर का रूप धारण करने में समर्थ हुआ। मेरे कार्य में हर मोड़ पर उन्होंने अपनां पूर्ण सहयोग तथा समुचित मार्ग दर्शन किया। उनके शुभ आर्शीर्वचनों का ही परिणाम है कि कार्य के प्रत्येक आयाम पर सफलता ने अपने द्वार खोल दिये। मैं अपने अन्तरमय की गहराई तक उनके प्रति कृतकृत्य हूँ। मैं शाब्दिक रूप से उनके प्रति आभार प्रकट कर उनकी सद्भावना व सहयोग का अपमान करने का अपराध नहीं कर सकता। बस ---------उनकी सौजन्यता ने मुझे आजीवन उनका ऋणी बना लिया है।

संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के समस्त गुरुजनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय में से कुछ कीमती क्षण मुझे प्रदान कर अपने ज्ञान कोश से कुछ मोती विखेर कर मेरा मार्गदर्शन कर मेरे शोध प्रबन्ध का रूप और अधिक संवार दिया।

पूज्य माता पिता तथा पिता तुल्य अग्रज श्री जगदीश प्रसाद मिश्र उप प्रधानाचार्य के प्रति मैं विनम्र प्रणामाञ्जलि अपित करता हूँ जिन्होंने कार्य के दौरान मुझे प्रत्येक सुख सुविधा प्रदान की तथा मेरे प्रतिक्षण उत्साह-वर्द्धन कर मेरे सफलता का मार्ग प्रशस्त किया।।

मेरे अनुजद्वय सतीश प्रसाद मिश्र पी०सी०एस० संयुक्त तथा मनीश प्रसाद मिश्र एम०ए० (प्राचीन इतिहास) मेरे प्रति असीम स्नेह भावना के कारण मुझे पग-पग पर अपना अपूर्व सहयोग प्रदान कर अपने स्नेह प्रबन्ध को और भी अधिक दृढ़ बना दिया है।

शोध प्रबन्ध के प्रणयन में जिन ग्रन्थों से सामग्री प्राप्त हुई है, उन ग्रन्थों, उनके रचनाकारों तथा उनके आवास रूप पुस्तकालयों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

टङ्कण प्रक्रिया में रह गई यन्त्रगत त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

अस्तु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मेरे समिति ज्ञान एवं सामर्थ्य के अनुसार विवेचित है। यदि इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से कुमारदास कृत "जानकीहरण" के विषय में विद्वज्जनों की कुछ जिज्ञासा शान्त हो सकी तो इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझूँगा। इसी अभिलाषा को अपने हृदय में संजोये मैं वरदायिनी माँ भारती के पावन चरणों में अपना शोध प्रबन्ध रूपी श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

गिरीश प्रसाद मिश्र

विनयावनत

गिरीश प्रसाद मिश्र

शोध प्रबन्ध की अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

पञ्चम् अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम् अध्याय

अष्टम अध्याय

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

महाकवि कुमारदास - एक सामान्य परिचय

जीवन वृत्तः-

वाग्देवी के अनुसार महाकवि कुमारदास के जीवन, कुल, समय, देश तथा रचना के विषय में अन्तः तथा वाह्य साक्ष ही हमारी सहायता करते हैं।

बीस सर्ग वाले समग्र 'जानकीहरण' महाकाव्य का नागराक्षरों में प्रकाशन का श्रेय १९६६ में प्रयाग को मिला। इतः पूर्व १८९१ई० में लंका के विद्यालंकार कालेज के प्रिंसिपल धर्माराम स्थविर ने शब्द प्रतिशब्द अनुवाद सहित सिंघली लिपि में आदि के १४ सर्ग और १५ सर्ग के प्रारम्भिक २२ पद्यों को सम्पादित प्रकाशित किया था। उसी के आधार पर जयपुर के पं० हरिदास शास्त्री ने १९९३ में कलकत्ते से नागराक्षरों में इसे प्रकाशित कराया। बड़ी खोज के बाद प्रयाग के प्रतिष्ठित पण्डित व्रजमोहन व्यास जी ने हिन्दी अनुवाद के साथ समस्त २० सर्गों को

संपादित कर संस्कृतज्ञों का बड़ा उपकार किया है। अब अनुशीलन के लिए यह महाकाव्य सुलभ हो गया है।

महाकाव्य के अन्त में वर्तमान चार श्लोकों की सामग्री से ही महाकवि के सम्बन्ध में अल्प जानकारी प्राप्त होती है। कवि के पिता का नाम 'मानित' था, जो विद्वान होने के अतिरिक्त वीर योद्धा भी थे और लंकाधिपति कुमारमणि के सेनानी थे। उन्हीं साक्ष्यों से यह भी सूचित होता है कि महाकवि के पिता 'मानित' ने युद्धभूमि में ही युद्ध करते-करते अपने प्राणों की आहूति दे दी थी। कवि के दो मामा थे जिनमें एक का नाम 'मेघ' तथा दूसरे का नाम 'अग्रबोधि'' था। ये दोनों शूर वीर योद्धा थे।[१]

पालन पोषणः-

मेघ तथा अग्रबोधि इन दोनों ही मातुली ने दुहमुँ ह बच्चे को पैदा होने के समय से ही अपने पुत्र कीतरह बड़े लाड़ प्यार से पाला पोसा, क्योंकि कवि के पिता युद्ध में वीरगति प्राप्त कर चुके थे और कवि जन्म से ही

---

१. जानकीहरण २०/६०-६१-६२ इ०सं० ।

व्याधिग्रस्त थे। बड़े होने पर कुमारदास ने अपने मातुलों की सहायता और प्रेरणा से इस काव्य का प्रणयन किया।[२] इन अन्तरंग साक्ष्यों के आधार पर यह भी सिद्ध हो जाता है कि कुमारदास लंकाधिपति नहीं थे, जैसा कि प्रायः कुमारदास के सम्बन्ध में जनश्रुति रही है। अपितु लंकापति कुमारमणि के आश्रित एक वीर एवं विद्वान के कुल में उत्पन्न हुए थे।

एतद्विपरीत डा० यदुनन्दन मिश्र २०वें सर्ग में उक्त चार श्लोकों के आधार पर कुमारदास के जीवन वृत्त को भ्रममूलक मत ठहराते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार उक्त चार श्लोक "जानकीहरण" की अन्य प्रतियों में प्राप्त नहीं है। अतएव डा० मिश्र के अनुसार कवि का अंश निम्न प्रकार है-[3] कुमारदास का नाम अपने पितामह 'धातुसेन' के अनुरुप कुमारधातुसेन था, जिसे कवि ने स्वयं कालिदास की प्रियता केकारण 'दास' पद जोड़कर, कुमार दास बना दिया। कवि के पितामह "धातुसेन" ने ४५९ ई० में मालावार तट निवासी तमिल पण्डु के ४३३ई० में स्थापित तमिल

---

२. जानकीहरण २०/६३ इ०सं० ।
३. उद्धृत जानकीहरण की भूमिका पृ० ३ व्याख्याकार एवं सम्पादक आचार्य भालचन्द्र पाण्डेय।

साम्राज्य का मूलोच्छेद करके अपना साम्राज्य स्थापित किया। उनके दो रानियाँ थी, प्रथम रानी से कक्सप - (कश्यप) नामक पुत्र तथा एक कन्या थी तथा दूसरी से मौग्गलान - (मौद्गलयान) नामक पुत्र था। धातुसेन ने मिगार (मृगारि) नामक भागिनेय से अपनी पुत्री की शादी कर दी तथा उसे मंत्री नियुक्ति किया। कक्सप अपने बहनोई मृगारि के साथ मिलकर ४७७ में धातुसेन को अपदस्थ कर दिया। प्राण बचाकर भाग जाने वाला छोटा भाई मौग्गलान भारत भाग आया तथा १८ वर्षो बाद १२ मित्रों के साथ अम्बष्ठकोल में युद्ध करके राज्य को हस्तगत कर लिया। १८ वर्षो के राज्य के अनन्तर उसकी मृत्यु हो गयी और ५१३ में उसका पुत्र कुमारधातुसेन (कुमारदास) राजा बना। यही कुमारदास "जानकीहरण" महाकाव्य का प्रणेता थी है।

यद्यपि डा० मिश्र की अन्वेषणयुक्ति आज बहुश: प्रचलित जनश्रुति के अनुसार संगत बैठ जाती है और कुमारदास का राजा होना एवं उसका काव्य प्रणयन भी संगत हो जाता है। फिर भी काव्य के अन्त:साक्ष्य को

इनकार करना कठिन तथा न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। इसकी अपेक्षा अन्तः साक्ष्य को बनवन्तर स्वीकार करके कुमारदास को केवल कवि मानना ही युक्तियुक्त हो। दूसरी बात यह है कि मद्रास की पाण्डुलिप और पाण्डुलिपियों की अपेक्षा अधिक प्रमाणित है।

शिक्षा:-

महाकवि की शिक्षा भारत या लंका में ब्राह्मण पण्डितों के द्वारा ही प्राप्त हुई है, क्योंकि उस युग में लंगा में भी ब्राह्मण विद्वानों की काफी प्रतिष्ठा थी और उन्हें मंत्री तथा राजपुरोहित पद पर नियुक्त किया जाता था जीविका के लिए प्रचुर सम्पति दान में दी जाती थी।

धर्म एवं सम्प्रदाय:-

इतिहासकारों ने उन्हें बौद्धधर्मानुयायी ही माना है तथा मौर्यकुलोत्पन्न कहा है मिहावंश, ने भी बौद्ध ही बताया है और एल०डब्लू टामस एवं आर नन्द गीकर आदि

मनीषियों ने भी उन्हें बौद्धधर्मी ही स्वीकारा है।[४] अन्त: साक्ष्य भी- कुमारदास को बौद्ध धर्म सिद्ध करते हैं। फिर भी वे उदार तथा सब धर्मों का आदर करते हैं।

समय निर्धारण:-

संस्कृत के अन्य कवियों की ही भाँ ति कुमारदास का समय निर्धारण भी विभिन्न मतभेदों से परिपूर्ण है, विद्वानों में कोई मतैक्य नही है। महाकवि कुमारदास के समय के सम्बन्ध में विविध विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं-

डा० क्रीथ का कथन है कि महाकवि कुमारदास काशिकावृत्ति (लगभग ६५०ई०) से परिचित थे जबकि दूसरी ओर वामन (लगभग ८००ई०) उन्हें अवश्य जानते रहे होंगे जिन्होंने कुमारदास की कविता में प्राप्तहोने वाले 'खलु' के पदादि में प्रयोग की निन्दा की है।[५]

कीथ महोदय के इस मत के सम्बन्ध में यहाँ

---

४. उद्धृत जानकीहरण की भूमिका पृ० ४ व्याख्याकार एवं सम्पादक आचार्य भालचन्द्र पाण्डेय ।
५. काव्यालंकार सुनवृत्ति, ५/१/५

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सुप्रसिद्ध अलंकारवादी वामन ने अपनी कृति में "न पादादौ सत्वादयः" के माध्यम से श्लोक के चरण के प्रारम्भ में 'खलु' आदि शब्दों का निषेध तो अवश्य किया है, परन्तु इस प्रसंग में महाकवि कुमारदास तथा उनकी कृति का विशेष रूप से नामोल्लेख नहीं प्राप्त होता। इससे प्रतीत होता है कि वामन का यह सूत्र एक सामान्य नियम का निर्धारण करता है। महाकवि कुमारदास की आलोचना वहाँ नही है। वहाँ का मूलपाठ यह है-

> "न पदादौ सत्वादयः (५/१/५) पादादौ सत्वादयः शब्दा न प्रयोज्याः। आदि शब्दः प्रकारार्थः। मेघामादौ प्रयोगो श्लिष्यिति ते गृह्यन्ते। न पुनर्वतहन्तः प्रभृतयः।"[६]

महाकवि कुमारदास कृत "जानकीहरण" में श्लोक के पाद के प्रारम्भ में 'इव'[७] तथा 'खलु'[८] शब्द का

---

६. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० सं०१८६, टि० १ डा० एस०एन० दास, गुप्ता, कलकत्ता १९४७।

७. जानकीहरण १०/७२ इ०सं०।

८. वही १३/३९।

प्रयोग कवि की मौलिक रचना नहीं, प्रत्युत में त्रुटियाँ काव्य के पश्चातवर्ती लिपिकर्ताओं पुनर्नियोजकों एवम् सम्पादकों के कारण काव्य में प्रविष्ट हो गयी है। महाकवि कुमारदास द्वारा रचित श्लोक अपने मूलरूप में इस प्रकार रहे होंगे।

"अथ रामं वृस्यन्ती प्रपेदे नैकसीसुता।

प्रचिन्तेव दरिद्रस्य स्थूलतयां नरेश्वरम्।।[९]

विकल्परचितं स्वयं दिशि भवन्तमालोक्य सा,

चिरेण खलु निघृणः स्मृतिपथेकृतोऽयं जनः।

इति प्रजहती मुहुर्विरवितानतिविष्टिरं

करोति तव विद्विषश्चकितदृष्टिकृष्टायुधान्।।"[१०]

अन्त में डा० कीथ का कथन है, कि सम्भवतः महाकवि कुमारदास माघ के भी पूर्ववर्ती थे।[११] माघ का समय, डा० कीथ के मतानुसार सप्तम शताब्दी के उत्तरार्द्ध

---

९. जानकीहरण १०/६२ इ०सं०।
१०. वही १३/३९ ।
११. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १४५-४६, डा० कीथ,- सन् १९६० ।

में होना चाहिए।[१२]

महाकवि कुमारदास के स्थिति काल के सम्बन्ध में आचार्य बलदेव निम्नलिखित तर्क के माध्यम से अपना मत स्थिर करते हैं कि 'जनाश्रय' नामक ग्रन्थ में (६००ई० के लगभग) कुमारदास के दो श्लोक उद्धत मिलते हैं, जिससे हम उन्हें ६००ई० के अनन्तर नहीं ला सकते। फलतः कुमारदास के समय को चतुर्थ शती तथा षष्ठशती के मध्य में रखना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।[१३]

डा० एम० कृष्णामाचारी का मत[१४] है कि महाकवि कुमारदास की अभिन्नता महावंश में वर्णित सम्राट कुमार धातुसेन के साथ सम्भवतः स्वीकार नहीं की जा सकती। काव्य की भाषागत विशेषताओं के कालिदास तथा अन्य पूर्ववर्ती कवियों के कावयों की भाषा से अत्यधिक साम्य रखने तथा परम्परया कालिदास एवं कुमारदास के परस्पर मित्र होने से यह निष्कर्ष अनुमति होता है कि कुमारदास

---

१२ वही, पृ० १५२ ।

१३ संस्कृत सुकवि समीक्षा आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ० ३१३, चौखम्बा विद्यीवन वाराणसी।

१४. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० १३५, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७० ।

को पंचम अथवा षष्ठ शताब्दी से पर्याप्त पूर्वकालीन कवि होना चाहिए। लंका तक में, सामान्यतया यह स्वीकार नहीं किया जाता है कि काव्य का रचयिता सिंहल का यह विशिष्ट सम्राट था। इसके अतिरिक्त जनाश्रयी छन्दोविचित में कुमारदास कृत "जानकीहरण" के उद्धरणों के आधार पर लेखक का कथन है कि कुमारदास षष्ठशती से पूर्व पल्लवित हुये।

श्री वी० वरदाचारी की सम्मति में महाकवि कुमारदास का तादाम्य अथवा अभिन्नता[१५] निश्चित करना कठिन है। यदि लंका के सम्राट कुमारदास (५१७-२६ई०) के साथ उनकी अभिन्नता स्थापित होती है तो काव्य का समय लगभग ५२०ई० निश्चित होता है।[१६]

कविराज पण्डित द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री के अनुसार महाकवि कुमारदास का समय ६७५ से ७५०ई० है।[१७]

---

१५. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ९०४, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।

१६. ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, वी० वरदाचारी, पृ० ७६-७७, इलाहाबाद ।

१७ संस्कृत साहित्य विमर्श, पृ० ४५६, न्यू इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली १९५६ ।

श्री वाचस्पति गैरोला महाकवि कुमारदास के समय के विषय में अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि कुमारदास की स्थितिकाल की समस्या का आज तक प्रामाणिक निराकरण न हो सकने के कारण उन्हें माघ के आसपास रखा जा सकता है। महाकवि कुमारदास का संभावित स्थितिकाल सातवीं आठवीं शताब्दी तक माना जा सकता है।[१८]

श्री जी०आर० नन्दरगीडर महोदय के मतानुसार महाकवि कुमारदास का जन्म अष्टम शती के अन्तिम तथा नवम शती के प्रथम चतुर्थांश के मध्य किसी समय हुआ था।[१९]

बहिः साक्ष्यः-

"जानकीहरण" विषयक सर्वप्रथम उल्लेख लंका की साहित्यिक परम्परा में १५वीं शताब्दी के 'पेरुकुम्बसिरित' ग्रन्थ में है। कतिपय विशिष्ट सम्राटों की,

---

१८. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८५५, वाचस्पति-गैरोला चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी सन् १९६० ।

१९. कुमारदास एण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर, पूना १९०८ ।

जो उस राजकुल में हुए हैं, जिसका वंशज 'पराक्रम-बाहु षष्ठ (१४१२-१४६७) था, यश प्रशस्तियों में कवि ने कुमारदास नामक सम्राट के विषय में वर्णन किया है।[२०]

यह ग्रन्थ संघबोधि की पराक्रम बाहु राजा के समय में किसी अप्रकट कवि द्वारा लिखा गया था।[२१] प्रस्तुत श्लोक का अर्थ इस प्रकार है-

"उस राजा कुमारदास ने १८ महाविहार बनवाकर १८ महावापी का उत्खनन कर एक ही दिन राज्याभिषेक तथा बुद्धशासन की प्रतिष्ठा कर और अपने आचार्य के आशीर्वाद से "जानकीहरण" की रचना कर अन्त में अपने मित्र कालिदास के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया।"

पेरकुम्बसिरित से गृहीत प्रस्तुत पद्य यह सिद्ध करता है कि १५वीं शती में लंका में कम से कम साहित्यिक सम्प्रदायों के मध्य, "जानकीहरण" कुमारदास

---

२०. लंका यात्रा, पृ०२९ भिक्षुधर्म रक्षित, यह वर्णन पालिमहावंश में भी २८वें परिच्छेद में है।
२१. वही पृ० २९ भिक्षुधर्मरक्षित, किताब महल, इलाहाबाद, १८५८ई० ।

नामक सिंहलीय सम्राट की कृति स्वीकार की जाती थी, जिन्होंने कालिदास नामक कवि 'रघुवंश' एवम् 'मेघदूत' आदि विश्व-विश्रुत कृतियों के रचयिता सुप्रसिद्ध भारतीय महाकवि ही थे।

किन्तु 'पेरकुम्बसिरित' का यह प्रसंग सम्राट कुमारदास जिन्हें "जानकीहरण" महाकाव्य का प्रणेता कहा गया है- की कालक्रमानुसार स्थिति के विषय में कोई निर्देश नहीं करता है। लगभग १२६५ई० में गद्य में रचित सिंहलीय धार्मिक ग्रन्थ 'पूजावती' में कुमारदास के विषय में कहा गया है-

"उसका (मोग्गलान का) पुत्र, सम्राट कुमारदास महान विद्वान था नौ वर्ष राज्य करने के पश्चात् जिस दिन उसके मित्र कालिदास की मृत्यु हुई थी, उसी दिन वह (कुमारदास) स्वयं चिता की ज्वालाओं में कूद पड़ा तथा अपना जीवन त्याग दिया।"[२२]

---

२२ "Ohu Kit Kumardasa Maha Kandia Navahauruddak Raja Yaya Kata Kalidasa Namtama Yahaluva Mala do teme bagini vada haralova giya ha."
पूजावती अध्याय ३४, पृ० १८ सं० माबोपिम्यि मेघकरघेर कोलम्बो, १९३२ ।

पूजावती सम्राट कुमारदास को "जानकीहरण" ग्रन्थ के प्रणेता के रूप में निर्दिष्ट नहीं करती है तथा न ही कुमारदास को कवि रूप में प्रस्तुत करती है, परन्तु एक व्यक्ति के रूप में उनका उल्लेख करती है। कालिदास भी कुमारदास के केवल मित्र कहे गये हैं। इन स्थितियों के फलस्वरूप यह तक सम्भाव्य है कि 'पेरकुम्बसिरित' में वणिति परम्परा उस रूप में १३वीं शती में प्रचलित नहीं थी। दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि पूजावती के लेखक ने लंका के इतिहास को सूत्र शैली में अति संक्षिप्त कर दिया हो तथा अपने पाठकों के लिए सम्यक्रूपेण ज्ञात विवरणों को विस्तृत रूप में प्रस्तुत न करके, अलंकार एवम् आड़म्बर विहीन विशिष्ट माध्यम से परम्परा का उल्लेख मात्र कर दिया हो।

यद्यपि 'पेरकुम्बसिरित' तथा 'पूजावती' दोनों में ही सम्राट कुमारदास द्वारा प्राण त्याग किये जाने की घटना का उल्लेख है पर कोई प्रामाणिक विस्तृत वर्णन उपलबध नहीं होता तथा अभी तक सुरक्षित किसी साहित्यिक कृति में

भी इनका कथन नहीं किया गया है। लंका के साहित्य सम्प्रदायों में ये घटनायें अथवा कथायें जनश्रुतियों से गृहीत है।[२३]

इनके अनुसार कुमारदास ने अपने काव्य को पूर्ण करने के पश्चात् इसकी प्रतिलिपियाँ भारत में सम्राटों एवम् विद्वानों को प्रेषित की।[२४] "जानकीहरण" को पढ़कर महाकवि कालिदास इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे इस काव्य कालिदास इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे इस काव्य के रचयिता से व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए लंका आये। कालिदास एवम् कुमारदास में घनिष्ठ मित्रता विकसित हुई तथा यह भारतीय कवि सिंहलीय सम्राट की राजसभा में एक सम्मानित अतिथि के रूप में रहे।[२५]

सम्राट एक ऐसी सुन्दरी के गृह जाया करते थे जिस पर से आसक्त थे। एक दिन उन्होंने उसकी गृहभिति पर निम्नलिखित पंक्ति अंकित कर दी–

---

२३. डा० मिरेन्डो – तृतीय सचिव लंका दूतावास, दिल्ली से प्राप्त १९६२ ।

२४. वही ।

२५ डा० मिरेन्डो – तृतीय सचिव लंका दूतावास, दिल्ली से प्राप्त १९६२ ।

"पद्मं पद्मेनोदभूतं श्रूयते न च दृश्यते।"

अर्थात् एक कमल से दूसरा (नवीन) उत्पन्न होता है। ऐसा सुना तो गया है, परन्तु किसी ने देखा नहीं तथा इन पंक्तियों के नीचे उन्होंने यह सूचना भी अंकित कर दी कि जो कोई भी इन पंक्तियों को पूर्ण करेगा उसे पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। संयोगवश कालिदास ने, जो उन दिनों उस सम्राट कवि से मिलने आये थे, सम्राट प्रिया उसी सुन्दरी के गृह सन्ध्यासमय निवास किया तथा प्रचीर पर उन पंक्तियों को अकस्मात् देखकर उसकी पूर्ति इस प्रकार की-

"बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम्।"

अर्थात् हे बाले! तुम्हारे मुखकमल पर मैंने दो इन्दीवर देखे हैं।

गणिका ने पुरस्कार प्राप्ति की आशा में कालिदास का उस रात्रि में वध कर दिया तथा उनके मृत शरीर को अन्तर्हित कर दिया। दूसरे दिन प्रातः काल जब

सम्राट उसके यहाँ गये तो उस सुन्दरी ने दो पंक्तियों की पूर्ति को स्वनिर्मित कृति कहकर पुरस्कार की याचना की। किन्तु कुमारदास को उन पंक्तियों की पृष्ठभूमि में किसी शक्ति सम्पन्न महाकवि के दर्शन हुए अतः उन्होंने उस स्त्री पर विश्वास नहीं किया तथा उसे वास्तविक रचनाकार को बताने के लिए विवश कर दिया। बलपूर्वक पूँ छने पर उस वध करने वाली स्त्री ने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया तथा जब कालिदास का निर्जीव शरीर सम्मुख लाया गया तब सम्राट के दुख एवं क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने उस प्रख्यात कवि के समुचित अन्त्येष्टि संस्कार की आज्ञा दी तथा जब चिता प्रज्वलित की गई तब वह उदारचरित सम्राट दुःख से आक्रान्त हो उछलकर अग्नि में कूद पड़ा और ज्वालाओं ने अपने कवि बन्धु के साथ उन्हें भी भस्म कर डाला। तदन्तर सम्राट की पंचरानियाँ भी तत्क्षण दग्ध हो गईं। यह कथा सुनने में ही इतनी असमान्य है कि इसको कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

किन्तु इस कहानी में सच्चाई का अंश यह है

कि 'कुमारदास' के समय में 'कालिदास' नामक एक कवि भी जीवित थे, और जैसा कि ज्ञात है कि कालिदास नामक कवि एक एक अधिक हुए हैं, यहाँ यह कहना कठिन है कि उस समय के 'कालिदास' कौन थे। स्वयं कालिदास के जीवन और तिथि के सम्बन्ध में लिखने वाले विद्वानों में इस विषय में भारी मतभेद है और कालिदास के नाम से सम्बद्ध विक्रमादित्य तथा भोज आदि नामों के व्यक्ति भी इतने अधिक है कि उनसे गुत्थी सुलझने के बजाय और अधिक उलझ जाती है।

सोड्ढल कवि ने (१००० ई०) अपने 'उदयसुन्दरी कथा' के स्ववंश वर्णन प्रसंग में आद्य कवियों की प्रसंशा में अपना उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि–

"बभूवुरन्येऽपि कुमारदासभासादयो हन्तकवीन्दवस्ते।

मदीमगोभि:कृतिनां द्रवन्ति चेतांसि चन्द्रोपलनिनिर्मलानि।।"[२६]

व्याकरण ग्रन्थ उणादि सूत्र वृत्ति में

२६. उद्धृत- संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३९७, डा० कीथ,
भावान्तरकार - डा० मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९६०

उज्जवलदत्त ने उणादि सूत्रों की व्याख्या करते हुए धूसर शब्द के प्रयोग हेतु निम्नलिखित पद्यांश को उद्‌धृत किया है-

"धूसर ईर्वत् पाण्डुरः। महिषधूसरितस्सरितस्तटः"[२७]इति "जानकीहरण" यमकम्।

इसी प्रकार महाकवि राजशेखर ने (९००वीं० शताब्दी) अपने 'काव्य मीमांसा' के चतुर्थ अध्याय में प्रतिभा-निरूपण प्रसंग में चर्चा करते हुए 'कुमारदास' का नाम उद्‌धृत किया है-

"जिसमें प्रतिभा नहीं है, उसके लिए प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर पदार्थ भी परोक्ष से प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत प्रतिभावन व्यक्ति के लिए अनेक अप्रत्यक्ष पदार्थ भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं। जैसे-मेघाविरुद्र कुमारदास आदि कवि जन्मान्ध थे।"[२८]

---

२७. जानकीहरण ११/७१ ।

२८. "अप्रतिभस्य पदार्थसार्थः परोक्ष इव प्रतिभावतः पुनरवश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव।
यतो मेधाविरुद्रकुमारदासादयो जात्यान्धाः कवयः श्रूयते।"
काव्य मीमांसा, चतुर्थोऽध्याय, पदवाक्य विवेक। चौखम्बा - संस्कृत सिरीज, वाराणसी १९३४ई०।

इसके साथ ही नाम निर्देश किये बिना भी उन्होंने कुमारदास के "जानकीहरण" महाकाव्य का १२/३६ पद्म उद्धृत किया है।[२९]

किन्तु लंका की कोई भी जनश्रुति तथा ऐतिहासिक अथवा साहित्यिक प्रमाण परम्परा इस ओर इंगित नहीं करती है कि कुमारदास नेत्रहीन थे राजशेखर ने भी 'श्रूयन्ते' कहकर यह व्यक्त किया है कि 'ऐसा सुना जाता है।'

फलतः इस कथन का केवल इतना महत्व है कि कुमारदास राजशेखर से पर्याप्त पूर्व के हैं।

कुमारदास का निम्नलिखित पद्य जो कि अयोध्या वर्णन के प्रसंग में है -

"चीनांशुकैरभ्रलिहामुदग्रशृङ्गाग्रभागोपहितैर्गृहाणाम्।

विटङ्ककोटिस्खलितेन्द्रसृष्टनिर्मोकपट्टैरिव या बभासे।[३०]

---

२९. "पदं नवैश्वर्यबलेन लम्भितं विसृज्य पूर्वं समयः विमृश्यताम्।
जगज्जिघत्सातुरकुष्ठपद्धतिर्न बालिनैवाहिततृप्तिरन्तकः।।"
जानकीहरण १२/३६

३०. जानकीहरण १/४ ।

उपर्युक्त पद्य का भाव स्पष्ट रूप में माघकृत 'शिशु पालवध' महाकाव्य के निम्न पद्य में अनुग्रहीत किया गया है-

"पृथुवारिधिवीचिमण्ड़लान्तर्विलसत्फेनवितानपाण्डुराषि ।

दधति स्म भुजङ्गमङ्कमध्ये नवनिर्मोकिरुचिं ध्वजांशुकानि।[३१]

माघ का समय (८५०ई०) निर्धारित किया गया है; अतएव कुमारदास माघ से पूर्ववर्ती ही सिद्ध होते हैं।

कुछ विद्वानों का तर्क है कि "जानकीहरण" महाकाव्य के 'सत्यापय,[32] अस्त्रिम,[33] असुतीवलम्,[34] आदि अनेक पद महर्षि "पाणिनि" के सूत्रों से सिद्ध नहीं, किन्तु "काशिका वृत्ति" का अनुशरण करते हैं, अतः कुमारदास ६वीं शताब्दी के बाद ही उत्पन्न हुए। उनके विरुद्ध यहाँ यह कहा जा सकता है कि "जानकीहरण" महाकाव्य के 'मुनि' अर्थ में प्रयुक्त 'असुतीवलम्' आदि प्रयोग तथा इसी प्रकार कुछ और प्रयुक्त पद काशिका के अनुकूल नहीं।

३१. शिशुपालवध २०/४७
३२. जानकीहरण १/८६
३३. वही ५/१३ ।
३४ वही ६/३३ ।

"काशिकावृत्ति" (६००वीं शताब्दी) ने "चन्द्रव्याकरण" का उपयोग किया है। "चन्द्रव्याकरण" का समय डा० लीविक के अनुसार (४८०ई०) है। चूँकि लंका में "चन्द्रव्याकरण" का ही उस समय प्रचार था, अतः कुमारदास जैसे वैयाकरण के द्वारा चन्द्रानुसारी प्रयोग ही अधिक सम्भव तथा युक्तिसंगत है। इस प्रकार कुमारदास का समय "चन्द्रव्याकरण"(४८०) तथा ८५० के मध्य ही निश्चित किया जा सकता है।

अन्तः साक्ष्यः-

"जानकीहरण" महाकाव्य के 'विंशतितम् सर्ग' के अन्तिम चार श्लोक, जो कवि के सम्बन्ध में कृतिपय सूचनायें प्रस्तुत करते हैं, अन्तः साक्ष्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। साथ ही महाकवि कुमारदास द्वारा प्रयुक्त कतिपय विशिष्ट शब्द ही विद्वानों की दृष्टि में कवि एवं उसके स्थितिकाल के निर्णय में अल्युपयोगी भूमिका का निर्वाह करत हैं।

"जानकीहरण" में प्रयुक्त कतिपय विशिष्टि शब्दों के सम्बन्ध में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्वान

प्राध्यापक डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है कि कुमारदास के समय का सर्वाधिक प्रबल प्रमाण "जानकीहरण" के प्रथम सर्ग निम्नांकित श्लोकों में ही प्राप्त हो जाता है।

"समुद्रमुलङ्ध्य गतस्तदीयस्तेजोऽभिधानो गुरुश्निराशिः।
नितान्त सन्तपितपूर्वकाष्टः प्रोत्स्वेदयामास नृपं कटाहे।।"[३५]

प्रस्तुत श्लोक में कटाह के राजा की पराजय का उल्लेख एक तत्कालीन घटना पर आधारित है, जिसमें एक भारतीय राजा ने "कटाह" के नृपतिको पूर्णतया परास्त किया था।[३६] "कटाह" मलयद्वीप का केड़ा है। मलयद्वीप तथा कटाहद्वीप का उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है।[३७] मलयद्वीप जम्बूद्वीप के षड्प्रदेशों में एक के रूप में उल्लिखित है।[३८]

इसी प्रकार १८हवें श्लोक में 'काञ्ची' का सार्थवाहों के जमघट का केन्द्र होना, १९वें भवनों के राजा

---

३५. जानकीहरण १/१८
३६. जानकीहरण भूमिका पृ० २० ।
३७ सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० २९
डा० बैजनाथपुरी, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ०प्र०
३८ वायु पुराण, ४८/१३ आनन्दाश्रम पूना ।

'माघनेन्द्र' की पराजय और २०वें में तुर्कों के राजा तुरुष्क के पतन का वर्णन है। २०वें श्लोक से यह ध्वनि निकलती है, वह भारतीय राजा जिसने 'कटाह' के नृपति को हराया था, काञ्ची नरेश था।

यहाँ पर हमें पल्लवों के इतिहास से सहायता मिलती है। पल्लव महेन्द्र वर्मा (६१०-६४०) ई० के पुत्र एवं उत्तराधिकारी पल्लव नरसिंह वर्मन प्रथम (६४०-६६८ई०) जो महामल्ल भी कहलाता था, पल्लव वंश का सबसे अधिक तेजस्वी शासक था। ईसा की सातवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के मद्रास से २०मील पर समुद्र के किनारे 'मामल्लपुर' नाम का एक कस्बा था। इस कस्बे पर मामल्ल वंश के राजा राज्य करते थे। नरसिंह वर्मन प्रथम ने, जिनका विरुद महामल्ल था, इस कस्बे की नींव रखी थी। इसी से इसका नाम 'मामल्लपुरम' पड़ा। विदेशी विद्वानों ने इसके भिन्न-भिन्न नामकरण किये हैं। डा० बेविगटन का कहना है शिलालेखों के आधार पर यह महामल्लइपुर कहलाता था। इसके अन्य नाम भी प्रचलित थे जैसे

मवलीपुरम, महाविल्लपुर इत्यादि। पर रेवरेष्ड् डब्लू टेलर ने इसका नाम 'मामल्लपुरम' निश्चित कर दिया और इसी नाम को प्रायः सब विद्वानों ने मान लिया। पल्लव नरसिंह वर्मन प्रथम के राज्यकाल में काञ्ची जगद्विख्यात राजधानी हो गयी थी जहाँ अनेक देशों के व्यापारी क्रय-विक्रय के हेतु एकल होते थे। काञ्चीगुणाकर्षितसार्थलोका' पल्लवों की महत्ता एवं दबदबा अपनी चरमसीमा पर था। उसी समय महामल्ल नरसिंह वर्मन प्रथम ने महावंश के अनुसार लगातार दो आक्रमण किया।[३९] यदि इसे आधार मान लिया जाय तो कुमारदास के समय को निश्चित करने के लिए दृढ़ आधार मिल जाता है।

काव्य के प्रथम सर्ग के १९वें श्लोक में जो 'यावनेन्द्र' आया है वह इतना स्पष्ट नहीं है। वस्तुः इस घटना का रहस्य 'दण्डिन' के 'दशकुमारचरित' के आख्यान मे प्रतिबिम्बित है जिसमें वे बंगाल की खाड़ी में जलसेनाध्यक्ष

---

३९ दृष्टव्य - 'एक्सपेन्शन आव पल्लव रूल इन - फार्दर इण्डिया पृ० ५ ।

रमेश की पराजय का वर्णन करते हैं। 'रमेशु' एक सीरियन नाम है।

बहुत सम्भव है कि कुमारदास जिन्हें काञ्ची के हालचाल की जानकारी थी, इस घटना को जानते थे, और वहाँ रहने के कारण 'दण्डिन' भी उनसे परिचित थे। ऐसा लगता है कि 'तुरुष्क' का तात्पर्य उत्तर पश्चिम भारत के वीगर तुर्कों से है जिनका वर्णन बाण ने भी 'हर्षचरित' में किया है।[४०]

इस आधार पर कुमारदास का समय सातवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध होना चाहिए। इस प्रमाण पर आधारित कुमारदास के समय का विरोध न तो "जानकीहरण" की शैली के विकास से होता है- जो भारवि और माघ के बीच की सीढ़ी है और न अग्रबोधि के वंशानुक्रम से जिन्हें कवि का मातुल कहा गया है, और जिस नाम के कई राजकुमार कहे गये हैं।

परन्तु इसके पहिले कि कुमारदास को भारवि

---

४०. हर्षचरित, अच्छ्वास ७ पृ० २१४ उत्सा० ।

और माघ के बीच में निश्चित रूप से रखा जाय, भारवि का समय ठीक तरह से निश्चित होना चाहिए। वह अभी तक संदिग्ध है। उनका समय जो अब तक बताया गया है उसकी पुष्टि किसी प्रकार के अभिलेख अथवा अन्य ऐसे आधार पर नहीं हुई जो सर्वमान्य हो।

कुमारदास के समय की ओर इंगित करने वाला एक श्लोक और है और वह "जानकीहरण" के २०वेंसर्ग का ३६वाँ श्लोक है। इसमें व्रतिन: का प्रयोग किया गया है।[४१] व्रतिन: से कवि का तात्पर्य है शैवों की शाखा, महाव्रतिन से। "जानकीहरण" में शैवों की इस मध्यकालीन शाखा का प्रयोग संस्कृत साहित्य में सबसे पुराना प्रयोग है। इससे महाव्रत शैवों, तथा कुमारदास के समय-निर्धारण पर महाव्रत बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। यह भी छान-बीन का विषय है कि शैवों की इस महाव्रतिन शाखा की जानकारी बाणभट्ट को थी या नहीं।

एक बात और विचारणीय है। वह है सूर्यास्त और

---

४१. सधातुकूटं धृतविश्वसंपदः शिवोपभोगप्रणयस्य भाजनम् ।
इमं तपस्सिद्धिगुणाय वृण्वते श्मशानकल्पं व्रतिनो विरागिण:।।
जानकीहरण २०/३६ इं०सं०।

सूर्योदय का वर्णन। कुमारदास ने सूर्यास्त का वर्णन तो जगह-जगह पर विस्तार से किया है, पर सूर्योदय का अत्यल्प। जैसे तीसरे सर्ग ६३ से ६८ में सूर्यास्त, आठवें सर्ग में ७५-९२ तक सान्ध्या और रात्रि का सुन्दर वर्णन, तथा सोलहवें सर्गमें १ से १४ श्लोक तथा सन्ध्या वर्णन है। सूर्योदय का वर्णन तृतीय सर्ग में ७८वां, सोलहवें सर्ग का सतरवां तथा इकहतरवां श्लोक। बाणभट्ट ने भी 'हर्षचरित' में सूर्यास्त का वर्णन विस्तार से चार स्थानों में किया है। अतएव इन दोनों कवियों में सूर्यास्त का पक्षपात समय सात्य की ओर निर्देश करता है। इसलिए कुमारदास का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध लगभग ६२०ई० के आसपास माना जा सकता है।

कृतियाँ :-

महाकवि कुमारदास की कृति के सम्बन्ध में "जानकीहरण" को ही माना जाता है, किन्तु कुछ प्रमाण ऐसे भी प्राप्त है जिनसे उनकी कुछ और कृतियों की अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। "पूजावती" में कुमारदास को परम

विद्वान् कहा गया है। एवं "पेरुकुम्बसिरित" में "जानकीहरण" एवं अन्य महाकाव्यों का कर्ता बताया गया है। साथ ही यह भी ध्येय है कि विभिन्न सुभाषितों मे प्राप्त कुमारदास के नाम से उद्धृत पद्यसमूह, उनके "जानकीहरण" काव्य में उपलब्ध नहीं होते। अतएव सम्भव है कि उन्होंने अवश्य कुछ और ग्रन्थ रचे हों, जो अब काल केगाल में समाहित हो चुके है। अतः उनकी और कृतियों में इनकार करना यथार्थ से आंख मूंदना ही है।

जानकीहरण का संक्षिप्त परिचयः-

"जानकीहरण" कुमारदास की एकमात्र रचना है। इस महाकाव्य में २०सर्ग है। यह रामायणी कथा को लेकर लिखा गया है। प्रथम सर्ग में अयोध्या, राजा दशरथ तथा उनकी महारानियों का वर्णन है। दूसरे सर्ग में बृहस्पति ब्रह्मा से सहायता माँगते समय रावण के चरित्र का वर्णन करते हैं। तीसरे सर्ग में राजा दशरथ की जलकेलि तथा सन्ध्या का काव्यमय रमणीय वर्णन है। चतुर्थसर्ग तथा पञ्चम सर्गों में दशरथ के महल में चार पुत्र पैदा होते हैं,

रामजन्म से लेकर ताड़का तथा सुबाहु वध तक की कथायें है। षष्ठ सर्ग में राम लक्ष्मण को साथ लिये विश्वामित्र जी जनकपुर पधारते हैं और जनक से उनकी भेंट होती है। सप्तम् में राम और सीता का प्रेम तथा विवाह है। अष्टम् में राम सीता का शृंगार वर्णन है। नवम् में दशरथ का अयोध्या के लिए, अपने पुत्रों और पुत्र वधुओं के साथ प्रस्थान तथा राम और परशुराम के सम्वाद का वर्णन है। दशम् में दशरथ राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय एक लम्बी वक्तृता देते हैं। मन्थरा का आगमन तथा राम का चित्रकूट प्रस्थान, भरत द्वारा दशरथ की मृत्यु का संदेश पँहुचना, राम का भरत को सान्त्वना देना और राज्य करने के लिए लौट जाने का आदेश करना। सर्ग की समाप्ति में रावण द्वारा जानकी हरण करना। एकादश सर्ग में रावण और जटायु का युद्ध मरते समय जटायु का राम से 'जानकीहरण' का वृतान्त कहना। राम तथा हनुमान की मित्रता का वर्णन। बालिवध के अनन्तर वर्षा ऋतु का अत्यन्त मनोहर वर्णन मिलता है। द्वादश सर्ग में शरद् ऋतु का वर्णन, लक्ष्मण को सुग्रीव को फटकारना, और सुग्रीव

द्वारा क्षमा याचना तथा सीता को खोजने के लिए वानरों का निकल पड़ना। त्रयोदश सर्ग में सुग्रीव को राम के मन को बहलाना और पर्वत की शोभा का वर्णन। हनुमान द्वारा सीता का पता लगाकर लौटना और राम से सब हाल कहना। चतुर्दश सर्ग में सेतु बन्धन का वर्णन। पञ्चादश सर्ग में अंगद का रावण को उपदेश देना, षोडस सर्ग में राक्षसियों की कमनीय केलियों का वर्णन, सप्तादश सर्ग में राम रावण के युद्ध का वर्णन। अष्टादश सर्ग में मेघनाक्ष का युद्ध करना और लक्ष्मण को नागपाश में बांध लेना। कुम्भकर्ण से युद्ध तथा उसका वध। एकोनविंश सर्ग में रावण वध, मन्दोदरी विलाप, सीता राम मिलन सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन है। विशंतिसर्ग में राम जानकी लक्ष्मण का अयोध्या आगमन तथा राम के राज्याभिषेक वर्णन के साथ ही यह महाकाव्य समाप्त होता है।

❑❑

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

"जानकीहरणम्" का महाकाव्यत्व एवं कथावस्तु का शास्त्रीय विवेचन

महाकाव्य का लक्षण:-

लक्ष्य के आधार पर लक्षण की कल्पना की जाती है- इन नीति के अनुसार वाल्मीकि रामायण तथा कालिदासीय महाकाव्यों के विश्लेषण करने से आलोचकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय रूप का अनुगमन किया तथा आलंङ्कारिकों ने अपने अलङ्कार ग्रन्थों में उसके लक्षण प्रस्तुत किये। इन आलङ्कारिकों में दण्डी सर्व प्राचीन हैं जिनका महाकाव्य का लक्षण सर्व प्राचीन माना जाता है। आचार्य दण्डी के अनुसार-[१]

"महाकाव्य की रचना 'सर्गों' में की जाती है। उनमें एक ही नायक होता है, जो देवता होता है अथवा धीर उदात्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है। वीर,

---

१. काव्यादर्श १/१४-१९ ।

शृङ्गार अथवा शान्त-इनमें से कोई रस मुख्य (अङ्गी) होता है। अन्य रस गौण रूप से रखे जाते है। कथानक इतिहास में प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन का चरित्रवर्णन किया जाता है। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार की वृत्त में रचना की जाती है, पर सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया जाता है। सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए न बहुत छोटे। सर्ग आठ से अधिक होने चाहिए और प्रति सर्ग के अन्त में आगामी कथानक की सूचना होनी चाहिए। वृत्त को अलंकृत करने के लिए सान्ध्या, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, वन, ऋतु, समुद्र पर्वत आदि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य किया जाना चाहिए। बीच-बीच में वीर रस के प्रसंग में युद्ध मन्त्रणा, शत्रु पर चढ़ाई आदि विषयों का भी सांगोपांग वर्णन रहता है। नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष्ज्ञ काव्य की मुख्य वस्तु होती है। महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य धर्म तथा न्याय की विजय तथा अर्धम और अन्याय का विनाश होना चाहिए।"

आचार्य रुद्रट ने दडी के द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षणों को कुछ विस्तार के साथ दुहराया है। ध्या देने की बात यह है कि रुद्रट् ने उतने ही विषय के उपबृंहण तथा अलङ्करण को उचित माना है जिससे कथावस्तु का कथमपि विच्छेद न हो सके।[२]

कालिदास के काव्यों में अलङ्करण काव्य-वस्तु का विच्छेद कथमपि नही करता, परन्तु भारवि तथा माघ इस दुष्प्रभाव से बच नहीं सके।

भारवि में मूल कथा के साथ दूरतः सम्बद्ध ऐसे विषय पाँ चसर्गों तक (४, ५, ८, ९, १०) तथा माघ में (६ से ११तक) रखे गये हैं। इस प्रकार इस काल में प्रबन्ध काव्यों मे ऐक्य तथा समन्वय का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है और शृङ्गार प्रधान विषयों का उपबंहण मूल आख्यान के प्रवाह को बहुत कुछ रोक देता है। विषय वर्णन में चमत्कार की कमी नही है, परन्तु इन नवीन वस्तुओं के योग से काव्य का विस्तार, अलङ्कार का विन्यास इतना अधि

---

२. काव्यालङ्कार – १६/१७-१९ ।

हो जाता है कि पाठकों का हृदय आप्यायित न होकर उनका मष्तिष्क ही पुष्ट होता है। वर्ण्य विषय तथा वर्णन प्रकार के सामञ्जस्य का अभाव जो कालिदास तथा अश्वघोष में खोजने पर भी नहीं मिल सकता, इस युग के मान्य कवियों के काव्य की जागरूक विशेषता है। ब्राह्मण कवियों में चार महाकवि-भारवि, भट्टि, कुमारदास तथा माघ इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं।

जानकीहरण की महाकाव्यता:-

महाकवि कुमारदास द्वारा प्रणीत "जानकीहरण" महाकाव्य विंशतितम् सर्गबद्ध रचना है। इसके सर्ग नातिदीर्घ हैं, नीति न्यून। एक सर्ग में प्रयुक्त अधिकतम् श्लोक संख्या १०१ (अष्टम सर्ग) तथा न्यूनतम संख्या ४३ (त्रयोदश सर्ग) है।

इस महाकाव्य का श्रीगणेश वस्तुनिर्देश रूप मङ्गलाचरण से हुआ है। महाकवि कुमारदास ने अयोध्या नगरी की श्री समृद्धि का अति सुन्दर वर्णन प्रथम सर्ग के

प्रारम्भिक श्लोकों में किया गया है।[3] महाकाव्य में वर्णित रावण द्वारा जानकी के हरण की घटना इस महाकाव्य के नामकरण का आधार है। यद्यपि इसमें राय के राज्याभिषेक तक की सम्पूर्ण कथा उपनिबद्ध है, तथापि महाकवि कुमारदास ने जानकी के हरण की घटना को ही प्रधानता प्रदान करते हुए इस महाकाव्य को "जानकीहरण" अभिधान से विभूषित किया है। इसके अतिरिक्त महाकवि कुमारदास की यह गर्वोक्ति भी कृति के इस "जानकीहरण" नाम का कारण है-

"जानकीहरणम् कर्तुम् रघुवंशे स्थिते सति।

कविः कुमारदासस्य रावणश्च यदि चामौ।"

लंकाधिपति रावण राम के होते हुए भी सीता का हरण करने में समर्थ हो सका तथा लङ्कावासी कवि कुमारदास सुप्रसिद्ध भारतीय महाकवि कालिदास द्वारा प्रणीत 'रघुवंश' महाकाव्य के होते हुए भी वाल्मीकीय रामायण से कथानक लेकर तथा अपनी अद्भुत कवित्व शक्ति से

---

३. जानकीहरण १/१-११ ।

महाकाव्य रचकर 'महाकवि' की उपाधि उपलब्ध करने में समर्थ हुए। इस प्रकार कृति का नाम 'जानकीहरणम् दोनों लङ्कावासियों की महत्ता सूचित करता है।

कथावस्तुः-

इस महाकाव्य की कथावस्तु कल्पना प्रसूत न होकर वाल्मीकीय रामायणादि ग्रन्थों पर अवलम्बित है। राम कथा का वर्णन वाल्मीकीय रामायण, महाभारत के रामोपाख्यान, ब्रहमवैवर्तपुराण, मत्स्य तथा पद्मादि पुराणों में हुआ है। "जानकीहरणम्" महाकाव्य में नृपति दशरथ द्वारा संरक्षित अयोध्या नगरी के वर्णन से लेकर सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्य परायण राम द्वारा दुराचारी रावण तथा अन्य राक्षसों का संहार करके जानकी का उद्धार किये जाने की कथा वर्णित है।

नायकः-

जानकीहरणम् महाकाव्य के नायक राम, सूर्यवंश के प्रतापी सम्राट दशरथ के पुत्र हैं। रामदेव कोटि के पात्र

है। जैसा कि महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में रावण में त्रस्त देवताओं को जगत्पति विष्णु द्वारा राम रूप में पृथ्वी पर अवतरित होने का आश्वासन दिये जाने से स्पष्ट होता है, परन्तु ईश्वर का अवतार होते हुए भी उनमें मानवीयता अधिक है। राम में धीरोदात्त नायक के सभी गुणों का सुन्दर एवं समुचित समावेश उपलब्ध होता है।

बाल्यावस्था में राम का मुनि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ प्रस्थान करने के पूर्व पिता के चरणों में प्रणमन,[४] ताड़का के स्त्री होने के कारण उसके वध में उनका अनुत्साह तथा मुनि के विमर्श पर उस राक्षसी का वध,[५] चतुर्दश वर्ष के वनवास की आज्ञा सुनकर उनका मन विचलित न होना,[६] माता कैकेयी की निन्दा करने से भरत को निवारित करना,[७] आत्मश्लाघा का अभाव,[८] स्वाभिमान,[९] मर्यादित व्यवहार,[१०] शरणागत विभीषण की न केवल रक्षा

---

४. जानकीहरणम् ४/४८ इलाहाबाद संस्करण ।
५. वही ४/६२
६. जानकीहरणम् १०/४५ ।
७. वही १०/६५-६६।
८. वही ५/६१ ।
९ वही १२/३८, ७/६, १३/४६, २०/१
१० वही १२/३८, ७/६, १३/४६, २०/१

करना अपितु उसे अपना मित्र बना लेना,[११] आदि गुण राम को श्रेष्ठ नायक के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

इसके अतिरिक्त परशुराम के प्रति राम के दर्पपूर्ण वचन,[१२] राम को धीरोद्धत तथा संभोग शृङ्गार के अवसर पर नायिका सीता के प्रति उनकी तत्रत् विलासमयी चेष्टा में,[१३] उनको धीर ललित नायक को कोटि प्रदान करती हैं, किन्तु यह उनके चरित्र का अस्थायी पक्ष है। सम्पूर्ण रूपेण दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि "जानकीहरणम्" महाकाव्य का नायक धीरोदप्त है। नायक राम की प्रतिनायक रावण पर अन्ततोगत्वा विजय वर्णित है।

रस एवं छन्दः-

महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य में रसराज शृङ्गार को अङ्गीरस के रूप में सन्निविष्ट किया है, साथ ही अन्य अङ्ग रसों को भी यथा स्थान सुन्दर अभिव्यञ्जना में कवि सफल हुआ है।

---

११ वही १२/३८, ७/६, १३/४६, २०/१
१२. जानकीहरणम् ९/23 - ३४
१३ वही ८/१-५३

एक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है तथा साहित्य शास्त्रीय नियमानुसार सगन्ति में छन्द परिवर्तित कर दिये गये हैं। किसी सर्ग के अन्त में मात्र एक छन्द तथा किसी सर्ग के अन्तिम श्लोकों में विविध छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

प्रस्तुत महाकाव्य में नाटक की पञ्चसन्धियों का सुन्दर निर्वाह हुआ है। राम के जन्म, विवाह एवम् राज्याभिषेक के प्रस्ताव तक मुखसन्धि, मन्थरा के षडयन्त्र से राम को वनवास दिये जाने का प्रसङ्ग तथा तजजन्य संकटापन्न स्थिति आदि प्रतिमुख सन्धि, रावण द्वारा सीता का अपहरण गर्भसन्धि, सुग्रीव से मैत्री के अनन्तर युद्धवर्णन तक विमर्श सन्धि तथा रावण-वध एवम् राम का अयोध्या प्रत्यागमन आदि निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत हैं।

वर्णन:-

"जानकीहरणम" महाकाव्य में साहित्यशास्त्रा-नुमोदित प्राकृतिक एवम् अन्य अनेक सुन्दर वर्णनों का

समावेश हुआ है, यथा- पर्वतों के अन्तर्गत हिमालय[१४] तथा सुवेल पर्वत का वर्णन,[१५] ऋतुओं के अन्तर्गत वसन्त,[१६] वर्षा[१७] तथा शरद् ऋतु का वर्णन,[१८] समुद्र वर्णन,[१९] नगरों के अन्तर्गत अयोध्या[२०] एवम् मिथिलापुरी का वर्णन,[२१] मृगया वर्णन,[२२] उपवन विहार एवं जलक्रीड़ा वर्णन,[२३] राम सीता की रति केलि का वर्णन,[२४] राक्षस राक्षसियों के काम क्रीड़ा का वर्णन,[२५] यात्रावर्णन के अन्तर्गत राम की वरयात्रा का अयोध्या प्रत्यागमन[२६] तथा रावण वध के पश्चात् सीता लक्ष्मण, विभीषण एवं वानरसेना सहित पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या लौटने का वर्णन,[२७] सूर्यास्त एवं चन्द्रोदय वर्णन,[२८] मुनि वर्णन के अन्तर्गत व्रती

---

१४ जानकीहरणम् १/४७-५२, १४/११-४४
१५ जानकीहरणम् १/४७-५२, १४/११-४४
१६ वही ३/१-१४, ११/४०-९५
१७ जानकीहरणम् ३/१-१४, ११/४०-९५
१८ वही १२/२-४, १४/२०
१९ वही २०/१०, १७/२२, १/१-११, ९०
२० वही २०/१०, १७/२२, १/१-११, ९०
२१ वही ६/१८-३०, १/५३-६२/६९-७२
२२ वही ६/१८-३०, १/५३-६२/६९-७२
२३ वही ३/१५-५९ तथा ८/१-५३ इ०सं०।
२४ वही ३/१५-५९ तथा ८/१-५३ इ०सं०।
२५ वही १६/२८-६७ तथा ९/१२-२२
२६ वही १६/२८-६७ तथा ९/१२-२२
२७ वही २०/१-१६
२८ वही ८/५५-७२, १६/१-२०

विश्वामित्र,[२९] एवम् परशुराम का वर्णन,[३०] तथा उपाय चतुष्टय का वर्णन[३१] आदि। सन्ध्या, प्रदोष रात्रि एवं अन्धकार का अति सुन्दर नीतिविस्तृत वर्णन सूर्यास्त एवम् चन्द्रोदय वर्णन के प्रसङ्ग में हुआ है।[३२] "जानकीहरण" महाकाव्य में अन्य वर्णन यथा चतुर्थ सर्ग में दशरथ नरेश के रमादि चारों पुत्रों के जन्म का वर्णन, चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठ सर्ग में यज्ञ का वर्णन, दशम, एकादश तथा पञ्चदश सर्ग में मन्त्रणा का वर्णन तथा अङ्गद के दूत कर्म का पञ्चदश सर्ग में वर्णन आदि अति संक्षेप में प्रस्तुत किय गये हैं।

महाकवि कुमारदास ने महाकाव्य में कौशल्य एवं सीता के नख-शिख सौन्दर्य वर्णन की क्रमशः प्रथम तथा सप्तम सर्ग में, नगर निवासियों द्वारा राम सीता की वर-यात्रालोकन वर्णन की नवम्. सर्ग में. मुनि विश्वामित्र के पवित्र तपोवन वर्णन की पञ्चम सर्ग. ऋषि गौतम के

---

२९ वही ६/२-५
३० वही ९/२६-३१
३१ वही १०/२४-३३, १५/१
३२ जानकीहरणम् षोड्शसर्ग ।

जनशून्य आश्रम वर्णन की षष्ठ सर्ग में तथा सेतुबन्ध वर्णन की चतुर्दश सर्ग में सुविस्तृत योजना की है।

नायक राम का राक्षसों के साथ युद्ध अनेक स्थलों पर वर्णित है यथा - पञ्चम सर्ग में राम-लक्षण का मारीच-सुबाहु के साथ तथा सप्तदश, अष्टादश एवम् एकोनविंशति सर्गों में राम तथा उनकी सेना का रावण तथा उसकी सेना के साथ भयंकर युद्ध। एकादश सर्ग में जटायु रावण युद्ध का वर्णन "जानकीहरण" महाकाव्य में हुआ है। अन्त में कवि ने राम-राज्याभिषेक का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय की साधना:-

महाकवि कुमारदास ने अपनी कृत में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष - इनका सम्यक्रुपेण वर्णन किया है। द्वितीय सर्ग में वर्णित रावण की कठोर तपस्या पञ्चम सर्ग में व्रती विश्वामित्र का यज्ञ, षष्ठ सर्ग में मुनि विश्वामित्र द्वारा जनक के यज्ञानुष्ठान की प्रशंसा करते हुए यज्ञ की

महत्ता एवं सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन, दशम सर्ग में राजा दशरथ की वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा आदि मोक्ष के साधन रूप धार्मिक कृत्यों की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार प्रथम सर्ग में उल्लिखित 'सार्थलोक का व्यापार हेतु काञ्ची आदि समृद्धिशालिनी नगरियों में आगमन तथा नृपति दशरथ की दिग्विजय आदि में अर्थ की साधना के दर्शन होते है। प्रथम सर्ग में राजा दशरथ का मृगया विहार, तृतीय सर्ग में उपवन विहार तथा जली क्रीड़ा, सप्तम सर्ग में राम सीता का विवाह, विवाहानन्तर राम-सीता की रति केलि आदि के वर्णन में मर्यादित काम की उपलब्धि होती है। "जानकीहरण" महाकाव्य में अर्थ तथा काम के साथ समता रखने वाले धर्म की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। मोक्ष के साधन रूप, अर्थ तथा काम के सैद्धान्तिक एवं मर्यादित व्यवहारिक रूप का सुन्दर समन्वय कृति में प्राप्त होता है।

इस प्रकार काव्य-सौष्ठव, भाव एवं कलापक्ष, शैली एवं महाकाव्यत्व की दृष्टि से समीक्षात्मक मूल्याङ्कन

करने पर महाकवि कुमारदास की देन "जानकीहरण" महाकाव्य एक प्रौढ़ रचना सिद्ध होती है, जो संस्कृत साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने की अधिकारिणी है।[33]

कथावस्तु का शास्त्रीय विवेचन

कथावस्तु के भेदः-

प्रख्यातः-

आचार्य धनञ्जय के अनुसार- इतिहास आदि से लिया गया इतिवृत प्रख्यात कहलाता है।

उत्पाद्यः-

कवि द्वारा स्वयं कल्पित उत्पाद्य कहलाता है।

मिश्रः-

इन दोनों (प्रख्यात और उस्पाद्य) के मिश्रण से मिश्र कहलाता है।

---

३३ प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।
मिश्रं च सङ्करात्ताभ्यां ।
दशरूपक प्रथम प्रकाश १५

अधिकारिक:-

आचार्य धनञ्जय के अनुसार मुख्य कथावस्तु को आधिकारिक कहते हैं।

प्रासङ्गिक:- अङ्ग रूप वस्तु को प्रासङ्गि कहते हैं।[३४]

नाटक सन्धियों का विवेचन

बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी और कार्य इन पाँ च अर्थप्रकृतियों का क्रमश: आरम्भ आदि पाँ च अवस्थाओं के साथ योग होने से क्रमश: मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहित में पाँ चसन्धियाँ कहलाती हैं।[३५]

मुख सन्धि:-

आचार्य धनञ्जय के अनुसार - जहाँ बीजों की उत्पत्ति होती है और जो अनेक प्रकार के प्रयोजन तथा रस

---

३४ तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गकं विदु:।।
दशरूपक प्र० प्र० ११।

३५ अर्थप्रकृतय: पञ्च पञ्चातस्थासमन्विता:।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या: पञ्च सन्धय:।।
आचार्य धनञ्जय दशरूपक प्र०प्र० २२।

की निष्पति का निमित्त होती है वह मुख्य सन्धि कहलाती है।[३६]

महाकवि कुमारदास अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में राम के जन्म, विवाह एवं राज्याभिषेक के प्रस्ताव तक मुख सन्धि का सुन्दर वर्णन किया है।

प्रतिमुख सन्धिः-

जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भेद होता है वह प्रतिमुख सन्धि कहलाती है।[३७]

"जानकीहरण" महाकाव्य में मन्थरा के षड्यन्त्र से राम को वनवास दिये जाने का प्रसङ्ग तथा तज्जन्य संकटापन्न स्थिति आदि में प्रतिमुख सन्धि के सुन्दर वर्णन दर्शन होते हैं।

---

३६ मुख्य बीज समुत्पत्तिर्नानार्थ रस सम्भवा।
दशरूपक प्र० प्र० २४।

३७ लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भदेस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
आचार्य धनञ्जय दशरूपक प्र०प्र० ३०।

गर्भ सन्धि:-

जहाँ दिखलायी देकर खोये गये बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है, वह गर्भसन्धि कहलाती है।[३८]

"जानकीहरण" महाकाव्य में रावण द्वारा सीता के अपहरण में गर्भसन्धि दृष्टिगोचर होती है।

विमर्श सन्धि:-

जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से फल प्राप्ति के विषय में विमर्श किया जाता है, तथा जिसमें गर्भ सन्धि द्वारा विभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाता है, वह विमर्श या अवमर्श सन्धि कहलाती है।[३९]

---

३८ गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषण मुहुः ।
वही प्र० प्र० ३६ ।

३९ क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्य विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शः इति स्मृतः।
वही प्र० प्र० ४३ ।

महाकवि कुमारदास ने "जानकीहरणम्" में सुग्रीव मैत्री के अनन्तर युद्ध वर्णन तक विमर्श सन्धि का प्रयोग किया है।

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने-अपने बिखरे हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का एक मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है, वह "निर्वहण" सन्धि कहलाती है।[४०]

महाकवि कुमारदास ने "जानकीहरणम्" में राम के रावण युद्ध, विजयोपरान्त अयोध्या प्रत्यागमन के वर्णन में 'निर्वहण सन्धि का प्रयोग स्पष्टतः काव्यशास्त्रीय नियमानुकूल प्रदर्शित किया है।

'जानकीहरणम्" की कथावस्तुः-

कुमारदास ने "जानकीहरणम्" महाकाव्य में राम कथा को २० सर्गों में निबद्ध किया है। प्रथम सर्ग में

---

४० बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।
आचार्य धनञ्जय दशरूपक प्र० प्र० ४८ ।

अयोध्यानगरी, राजा दशरथ एवं उनकी रानियों का वर्णन है। द्वितीय में वृहस्पति जी द्वारा रावण के आतङ्कमय चरित्र का रूपाङ्कन है। तृतीय सर्ग राजा दशरथ की जलक्रीड़ा और सन्ध्या समय का सुन्दर आलङ्करिक चित्रण प्रस्तुत करता है। चतुर्थ एवं पञ्चम् सर्ग की कथा त्वरित गति पकड़ती है और चार पुत्रों की उत्पत्ति से लेकर ताड़का वध सुबाहुमर्दन पर्यन्त कथानक को समेटे हुए है। षष्ठम् सर्ग में राम लक्ष्मण जनकपुर पँहुचते हैं, जहाँ जनक जी से भेंट होती है। सप्तम सर्ग में राम तथा सीता का प्रेम प्रदर्शन और विवाह वर्णित है। अष्टम सर्ग राम-सीता का शृङ्गारिक चित्रण प्रस्तुत करता है। नवम् में सब भाई अयोध्या को लौटते हैं। दशम् में महाराज दशरथ भारतीय राजनीति पर प्रकाश डालते हुए नजर आते हैं, रामचन्द्रजी का यौवराज्याभिषेक सर्वसम्मति से होता है। अनेक घटनाओं के साथ सर्गान्त तक जानकीहरण भी दिखाया गया है।

एकादश सर्ग श्री राम और हनुमान की मैत्री दर्शाता है। इसी सर्ग में बालिवध के अनन्तर वर्षा ऋतु का

सुन्दर चित्रण किया गया है। द्वादश सर्ग शरद ऋतु बीतने पर भी सीतान्वेषण में शिथिलता दिखाने वाले सुग्रीव के ऊपर लक्ष्मण के रुद्र क्रोध का वर्णन करता है। भयभीत सुग्रीव रामचन्द्र के समीप आता है और पर्वत का वर्णन करता है। त्रयोदश में राम की विकलता एवं चतुर्दश में सेतु वर्णन है। कुमारदास ने वानरों द्वारा सेतुपारगमन का चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत किया है। पंद्रहवें सर्ग में अङ्गद रावण की सभा में दूत बनकर उपस्थित होते हैं। सोलहवाँ सर्ग राक्षसों की कमनीय क्रीड़ा का अंकन करता है। सत्रह से बीसवें सर्ग पर्यन्तः राम-रावण युद्ध चलता है। अन्त में राम रावण पर विजय प्राप्त करते हैं। इसी के साथ काव्य पूर्ण हो जाता है।

"जानकीहरणम्" की कथावस्तु के मूल स्रोत का अन्वेषणः-

संस्कृत साहित्य के उपजीव्य काव्य ग्रन्थों में 'परे कवीनामाधारम्'[४१]-- रूप वाल्मीकीय रामायण का जितना महत्व है उतना अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं। भूतल

1 MAR 2004
T-598

४१ वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, ४/२७ ।
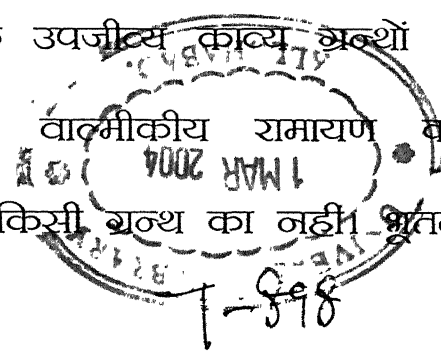
में महाकाव्य का प्रथम सदवतार इसी कृति से हुआ तथा पुन: इस पद्धति पर अनेक ग्रन्थ विनिर्मित हुए। सांस्कृतिक दृष्टि यथा-समाज के मूल्यों, जीवन के आदर्शों कथानक के विकास की पद्धतियाँ तथा भाषा के काव्यमय प्रयोग की विशेषताओं से इस महाकाव्य का ऋण संस्कृत साहित्य अतुलनीय धारण करता है। राम का लोकोत्तर चरित्र भारतीय जीवन का इतना अधिक उदात्त एवं सर्वाङ्ग प्रतिनिधित्व करता है कि समस्त संस्कृत साहित्य न्यूनाधिक मात्रा में इससे प्रतिबिम्बित है। काव्य का लगभग अर्धभाग राम कथा से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध है तर्थव महाकवि वाल्मीकि की उदात्त, प्रसन्न नैसर्गिक रसमयी रचना की दीरित से भ प्राय: सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य आभासित है।

इसके अतिरिक्त महाभारत के रामोपाख्यान में वन, द्रोण तथा शान्ति पर्व में रामायण का वर्णन हुआ है। स्कन्द पुराण, भागवत, विष्णु, ब्रहमवैवर्त, अग्नि तथा ब्रह्मपुराण में रामकथा वर्णित है।

"जानकीहरणम्" की कथावस्तु का आधार वाल्मीकि रामायण:-

अनेक ग्रन्थों का इतिवृत्तात्मक आधार स्रोत वाल्मीकि का महाकाव्य 'रामायण' रहा है, किन्तु उनमें 'रघुवंश' तथा "जानकीहरणम्" अत्यन्त विख्यात हुए हैं। "जानकीहरणम्" का कथानक प्रचुर मात्रा में वाल्मीकीय रामायण से गृहीत है। कवि ने अपनी कृति के लिए रामायण के प्रथम ६ काण्डों के आधार बनाया है। "जानकीहरणम्" की कतिपय घटनाओं तथा वर्णन कालिदास कृत 'रघुवंश" नवम सर्ग से चतुर्दश सर्ग के २१वें पद्य पर्यन्त) से भी उपकृत हैं।

रामायण की कथावस्तु से परिवर्तन एवं परिवर्द्धन:-

महाकवि अथवा लेखक की रचना शैली में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बत होता है तथा उसका व्यक्तित्व तत्कालीन परिस्थितियों से परिवेश की देन होता है। कवि की शैली में प्राप्त होने वाली उसकी अपनी मौलिकता ही

साहित्य के क्षेत्र में अनेक स्थान की निर्णायिका होती है। साहित्य शैली के विकास पर युगों की सामाजिक चेतना का विशेष प्रभाव पड़ता है। काल की साहित्यिक मान्यता, युग का वातावरण तथा सामाजिक रूढ़ियाँ उस युग के साहित्य को एक विशिष्ट शैली का आश्रय लेने को बाध्य करती है। अतः किसी भी कवि की शैली को समझने के लिए तत्कालीन काव्यों के साहित्यिक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

महाकवि कालिदास के अनन्तर अनेक महाकवियों ने महाकाव्यों की रचना की। कालिदासोत्तर-युगीन विशिष्टता तथा साहित्य चेतना के कारण आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास इत्यादि की 'रसमयीपद्धति' के स्थान पर 'विचित्रमयी पद्धति' को कविजनों ने अपनाया। इसमें वर्ण्य विषय की अपेक्षा वर्णन प्रकार पर बल दिया गया तथा सारल्य के स्थान पर कठिन्य एवं पाण्डित्य को ही विशेष महत्व प्रदान किया गया, इस हेतु काव्य में विविध विषयों का समावेश आवश्यक समझा जाने लगा। इस प्रकार महाकवि वाल्मीकि तथा कालिदास आदि की निसर्ग

सिद्ध स्वभाविक काव्यधारा राजाश्रयी कवियों के संसर्ग के कारण पाण्डित्य, शब्द तथा उक्ति-वैचित्य एवम् व्युत्पत्ति होकर प्रवाहित होने लगी। इस काल में प्रबन्ध काव्यों में ऐक्य तथा समन्वय का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचन होता है, तथा शृंगार प्रधान विषयों का उपबृंहण मूल अख्यान के प्रवाह को अधिकांश सीमा तक अवरुद्ध कर देता है। भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष के प्रेमी इन कवियों की कृतियों से पाठकों का ह्दय आप्यायित न होकर उनका मस्तिष्क ही तुष्ट एवम् पुष्ट होता है। इन कवियों में चार महाकवि-भारवि, भट्टि, कुमारदास तथा माघ इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं।[४२]

महाकवि कुमारदास ने अपनी कृति "जानकीहरणम" में भावों एवम् विचारों को सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है तथा साथ ही तत्कालीन काव्य-परम्पराओं का पालन करते हुए स्वाभाविक एवम् कृत्रिय, सुकुमार तथा विचित्र मार्ग का मञ्जुल समन्वय उपस्थित किया है।

---

४२ संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, पृ० सं० १९५ तथा १३९ ।

महाकवि कुमारदास के महाकाव्य में काव्यालंकृति की मादकता मचलती है। उनका काव्य कविता-कलाका आश्चर्यकारी चित्र मंदिर है वाल्मीकि का उद्देश्य आदर्श जीवन का चित्रण तो कुमारदास का अभिप्राय जीवन के मादक सौख्य का अंकन है। वाल्मीकि भारतीय ऋषि हैं तो कुमारदास चतुर कला प्रवीण। उनके काव्य में अनुप्रास की छ्टा, वाणी का विजृम्भण, वर्णनों की विविधता, कल्पनानुरंजित प्रकृति चित्रण तथा शृङ्गार की विलासिता देखती ही बनती है।

❑❑

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

"जानकीहरणम्" का पात्र परिचय - चरित्र चित्रण एवं नायकादि विश्लेषण

नायक का स्वरूप-

आचार्य धनञ्जय नायक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है- नायक विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोकप्रिय पवित्र, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंश वाला स्थिर युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला तथा मान से युक्त, दृढ़, तेजस्वी शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होता है।[१]

नायक भेद -

यह नायक ललित, शान्त, उदात्त और उद्धत भेद से चार प्रकार का होता है।[२]

---

१. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरोयुवा।।
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।
दशरूपक द्वि०प्रकाश १-२ ।

२ भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्।
दशरूपक द्वि०प्रकाश २ ।

चिन्तारहित, गीत आदि कलाओं का प्रेमी, सुखी और कोमल स्वभाव तथा आचार वाला नायक धीरललित कहलाता है।[३]

सामान्य गुणों युक्त द्विज आदि नायक तो धीर प्रशान्त कहलाता है।[४]

जिसमें घमण्ड और डाह अधिक होता है जो माया और कपट में तत्पर होता है, अहङ्कारी, चञ्चल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला है, वह धीरोद्धत्त नायक है।[५]

धीरोदात्त नायक की विशेषता:-

आचार्य धनञ्जय के अनुसार- उत्कृष्ट अन्त:करण वाला अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला, दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त कहलाता है।[६]

---

३ निश्चिन्तो धीरललित: कलासक्त: सुखी मृदु:।
आचार्य धनञ्जय दशरूपक द्वि०प्र० ३ ।

४ सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक:।
वही द्वितीय प्रकाश ४ ।

५. दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायण:।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थन:।।
वही द्वि०प्र० ६ ।

६. महसत्त्वोऽतिगम्भीर: क्षमावानविकत्थन:।
स्थिरोनिगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रत:।।
वही द्वि०प्र० ५ ।

दिव्य नायक राम:-

'जानकीहरणम्'' महाकाव्य के नायक राम, सूर्यवंश के प्रतापी सम्राट दशरथ के पुत्र हैं। उनमे धीरोदात्त नायक के सभी गुणों का सुन्दर एवं समुचित समावेश उपलब्ध होता है। राम देव कोटि के पात्र हैं। जैसा कि महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में रावण में त्रस्त देवताओं को जगत्पति विष्णु द्वारा राम रूप पृथ्वी पर अवतरित होनें का आश्वासन दिये जाने से स्पष्ट होता है- यद्यपि मैं अपने उदर में तीनों लोकों का सम्पूर्ण भार वहन कर रहा ँहू, फिर भी मैं मर्त्यलोक में एक स्त्री के गर्भ से जन्म लेकर और राम के नाम से विख्यात होकर उस, देवताओं के शत्रु राक्षसों के स्वामी रावण के सिरों को एक ही बाण से काट कर उसे पराजित कर दूँ गा[७] राम में पितृ भक्त, मातृ भक्त, स्वाभिमानी, पराक्रमी, श्रृङ्गार प्रिय, शरणागत के रक्षक इत्यादि गुण विद्यमान हैं।

---

७ कुक्षिस्थनिः शेषलोकत्रयभारोद्वहोऽप्यहम् ।
विधायमानुषी कुक्षिवासं शोकक्षमाय वः ।
भूत्वा राम इति ख्यातः कुर्याभर्तुः सुरद्विषाम् ।
एकबाणकृताशेषशिरच्छेदपराभतम् ।।

राम अत्यन्त सुन्दर थे। उनके कंधे मांसल और वक्षस्थल विशाल था। राम का कटि प्रदेश पतला था। उनके शरीर को किसी प्रकार का कष्ट न हो ऐसा विचारकर ब्रह्मा ने शरीर को मानों लम्बी, भुजाओं के स्तम्भों से दृढ़ता से बाँध दिया था।[८] राम की हाथों की क्रान्ति ने तो प्रफुल्ल कमलों की प्रभा को घुटने टेकने के लिए विवश कर दिया था।[९] दृष्टि चक्षु और ज्ञान चक्षु नामक उनकी दो आँखे थी, दृष्टि चक्षु तो केवल कान तक पँहुचती थी किन्तु ज्ञान चक्षु समस्त वेदों के पार तक जाती थी।[१०] इसी का मार्मिक वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

"ज्ञानं विलोचनमिति प्रथिते तदीये नेत्रे उभे विमलवृत्तिगुणस्वभावे।

एकं तयोः श्रुतिपथस्य समीपमात्रं यातं प्रपन्नमखिलश्रुतिपारमन्यत।।"

राम में पितृ एवं मातृ भक्ति कूट-कूट कर भरी थी। उन दिनों परिवार पितृ प्रधान थे। पिता ही परिवार का धुरन्धर था। उसकी आज्ञा सर्वमान्य थी। माता-पिता राम के

---

८. जानकीहरण ६/५६ इ०सं०
९ वही ६/५७ ।
१० वही ६/५८ ।

लिए परमस्नेह एवं श्रृद्धा के भाजन थे। बाल्यावस्था में राम का मुनि विश्वामित्र के यज्ञ रक्षार्थ प्रस्थान के पूर्व पिता के चरणों में प्रणयन इसका स्पष्ट प्रमाण है।[११] वस्तुतः 'पुत्' नामक नरक से जो त्राण दिलावे, वही पुत्र है।[१२अ] अतएव पुत्र के अभाव में माता-पिता का उद्विग्न रहना स्वाभाविक था। रामायण कालिक "विनात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः"[१२ब] का कुमारदास के दृष्टिकोण "विधुरश्चेतसि पुत्रकाम्यया"[१२स] अथवा "अदृष्टपुत्रानन-वन्ध्य दृष्टिः"[१२द] आदि प्रयुक्तियों से बड़ा साम्य है। निराश होने के कारण अपने अभ्युदय के प्रति कोई अच्छा न होने से जो स्वयं अपने को कोस रही थी, ऐसी कैकेयी को भला बुरा कहते हुए भरत को रोककर राम ने कहा था-

अपने पति के सत्य का पालन करने वाली कैकेयी तुम्हारी श्रृद्धा का पात्र है। जो पूजनीय है उसकी पूजा से मुँ हफेरने में अमङ्गल होगा।[१३]

---

११ जानकीहरणम् ४/४८ इ०सं०
१२अ. रामायण २/१०७/१२ ।
१२ब. वही २/१२/१११ ।
१२स. जानकीहरण ४/१ ।
१२द. वही १/४४
१३. वही १०/६५

"पूजनीया च ते देवी पत्युः सत्यानुपालिनी।

दूषयिष्यति पूज्येषु पूजावैमुख्यमायतिम्।।"

राम में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। वे कहते हैं गुण की स्पृहा से, गुणवान् पुरुषों से किये हुए उपकार को जो असज्जन पुरुष तुच्छ समझता है, वह व्यर्थ किये हुए परिश्रम जनित कोप से निस्सन्देह मारा जाता है।[१४] इतना ही नहीं वे और भी कहते हैं संसार को मारने की आतुरता जिसका क्रम है ऐसे यमराज को, केवल बलि को मार कर तृप्ति नहीं होगी। अर्थात् वह आपको भी मारेगा-[१५]

"पदं नवैश्वर्यबलेन लम्भितं विसृज्य पूर्व समयो विमृश्यताम्।

जगज्जिघत्सातुकष्ठपद्धतिर्नवालिनैवाहिततृप्तिरन्तकः।।"

राम अत्यन्त पराक्रमी थे। वीरता उनमें कूट-कूट कर भरी थी फिर भी वे अङ्गद को रावण के पास शान्ति का प्रस्ताव लेकर भेजते हैं कि सीता को लौटा दें लेकिन रावण

---

१४. जानकीहरण १२/३५ ।
१५ वही १२/३६ ।

उसकी बात पर ध्यान नहीं देता तथा गर्व के नशें में ही चूर रहता है। अङ्गद कहते हैं कि तुम्हारा यह यश व्यर्थ है। इन्द्रलोक का जीतने वाले अपने इस अजेय यश को. राम के तेज से उत्पन्न अग्नि की दीप्ति से, दिशाओं में फूले हुए कांसे के वन के समान जला हुआ समझो।[१६] लेकिन वह एक नहीं मानता और सीता को नहीं लौटाता। जिसकी परिणति युद्ध में बदल जाती है। राम ने शत्रु की जीतने के लिए न केवल समुद्र पर सेतु बाँ ध बल्कि अपने बाणों की धनी परम्परा से सूर्य के रास्ते में भी पुल बाँ ध दिया था।[१७] राम इतनी फुर्ती से बाण चलाते थे कि बाण दिखलायी नहीं पड़ता था। अतः उनका घनुष से पहिले निकलना और शत्रु के शरीर पर लगना केवल अनुमान से ही जाना जा सकता था।[१८] इसी का वर्णन करते हुए कुमारदास ने लिखा है-

"शरस्य मोक्षस्य प्रथमं महीभुजः ततश्च तद्वैरि शरीरविक्ष्यतिः।

इति क्र मोगादनुमानगम्यतां अलक्ष्य वेगेषु शरेषु धन्विनः।।"

---

१६ . जानकीहरण १५/२७ ।
१७ वही १९/११ ।
१८ वही १९/१५ इ०सं० ।

"जानकीहरण" महाकाव्य के नायक राम शृङ्गार प्रिय थे। एक स्थल पर राम "पुष्परत्नविभव" से सीता को "यथेप्सित" विभूषित करते हुए चित्रित किये गये हैं।[१९] इसी प्रकार सूरत केलि के उपरान्त प्रमदकाननस्थित दीर्घिका में जल-विहार करते समय उनके पुष्पाभूषणों का जलतरंगों के कारण विच्युत होना भी उल्लिखित है।[२०] इतना ही नहीं सीता के अंध्रि युगल पर कुंकुम-द्रव का लेप करते हुए राम के हाँ ३ काँ पेन्काँ पेत सहसा अत्यधिक ˝ऊ र्ई तक पँहुच गये थे।[२१] महाकवि कुमार दास ने राम को अपनी "आनमित" तर्जनी से सीता के मुख पर पत्र रचना करते हुए चित्रित किया है, जिन्होंने प्रथमतः उनके अर्धमुकुलित नेत्र को, तत्पश्चात् सुरभि-युक्त मुख को चूम लिया था।[२२] यथा-

"पत्रमानमिततर्जनीशिरः स्पृष्टकर्णलतिकोऽयमर्पयन्।

पूर्वमर्धमुकुलीकृतेक्षणं तन्मुखं सुरभिगर्भमन्वभूत्।।"

---

१९ जानकीहरणम् ८/४२ ।
२०. वही ८/३४ ।
२१. वही ८/३६ ।
२२. वही ८/३९ ।

राम शरण में आये हुए की रक्षा करना अपना पावन कर्तव्य समझते हैं। यद्यपि विभीषण शत्रु का भाई था लेकिन वे न केवल विभीषण की रक्षा करते हैं अपितु वे उसे अपना मित्र भी बना लेते हैं।[२३]

यथा-

"अथ स्फुरत्काञ्चनभित्तिं पुष्पकं विमानमारुहय विभीषणान्वित:।

समं सुमित्रात्मजवानरेश्वरै: खमुत्पपात स्वपुरी यियासया।।"

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि कुमारदास कृत "जानकीहरणम्" महाकाव्य के नायक राम का चरित्र आदर्शपुत्र, भ्रातृप्रेमी, आदर्श पति एवं प्रजावत्सल के रूप में कम किन्तु शृङ्गारप्रिय एवं विलासी रूप में अत्यधिक निखरा है।

---

२३. जानकीहरणम् १३/४६, २०/१ इ०सं० ।

:: नायिका सीता ::

नायिका के तीन भेद प्राप्त होते हैं। इन्हीं तीनों की अवस्था के अनुसर तीन भेद होकर प्रभेदों के साथ तेरह भेद हो जाते हैं। नायक के गुणों की भाँति नायिका में भी सामान्यत: सौन्दर्य, शान्ति शालीनता आदि गुणों की कल्पना की जाती है।[२४] दशरूपकार ने स्त्रियों के बीस सत्वज अलङ्कार माने हैं।[२५] नायिका अधिकतर उच्च कुलोत्पन्न होती है। इस प्रकार की नायिकाओं को उत्तम कोटि की नायिका कहा जाता है।

मिथिलाधिपति राजर्षि जनक की पुत्री और राम की पत्नी सीता "जानकीहरणम्" महाकाव्य की नायिका है। सीता महाकाव्य की प्रमुख घटनाओं का केन्द्र बिन्दु हैं। सीता अप्रतिम सुन्दरी पूर्णवयस्का, पतिव्रता, शृङ्गार प्रिय, संगीतादि ललित कलाओं में निपुण, तथा वासना पूर्ति के साधन के रूप में महाकाव्य में चित्रित है।

---

२४. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।
दशरूपक द्वितीय प्रकाश २४

२५. यौवने सत्वजा: स्त्रीणामलङ्कारास्तु।
वही ४७ ।

सीता अनिंद्य सुन्दरी थी। उनकी वह स्वाभाविक पतली कमर तथा स्वभाव से उष्ण और कड़े दो स्तन शारीरिक सौन्दर्य को वर्धित करते थे, तो चमचमाता हुआ बाजूबंद (अङ्गद) उनके हाँ थ की सुन्दरता में चार-चाँ दलगाता था। सीता के मुखचन्द्र की नकल करने के लिए चन्द्रमा तो बढ़ता था, किन्तु सम्पूर्णता को न प्राप्त करने पर शोक के कारण घुटने टेक देता था।[२६] सीता जैसे रत्न को देखकर पुष्पायुध तो अपने ऊपर बाण छोड़ता ही है किन्तु वह राम पर भी बाणों का तीव्र आघात करने लगता है।[२७]

यथा-

"पुष्पायुधः स्वात्मनि शस्त्रपातान् कुर्वीत सीताऽऽकृति वीक्ष्यरत्नम्।

चित्रयते तन्न यदात्मयोनेस्तीव्रा मयि व्यापृतिरायुधानाम्।।"

"जानकीहरणम्" की नायिका सीता पूर्ण वयस्का है। विवाह के समय वाल्मीकि की सीता ६ वर्ष की थी, क्योंकि पञ्चवटी में रावण को अपना परिचय देते हुए

---

२६. जानकीहरणम् ७/१३ इ०सं० ।
२७ वही ७/१८ ।

उन्होंने कहा था कि-

"उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।"[28] और-

"अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।।"[29]

भवभूति की सीता भी उस समय "शिशु" ही थीं- "चित्र-दर्शन" प्रसङ्ग में राम उस नव-वधू सीता का स्मरण कर रहे थे जिसने - "पतले, कम घने और कपोलों पर शोभित होने वाले मनोहर बालों से तथा दाँ तरूपी अंकुरों से भोले-भाले मुख को धारण करने वाली यह बाला अत्यन्त मनोरम, चाँ दनी के समान (कमनीय) और स्वाभाविक विलासों से युक्त अपने मनोज्ञ अङ्गों से मेरी माताओं के (मन में) कौतूहल उत्पन्न करती थी।"[30]

किन्तु कुमारदास की सीता विवाह के समय पूर्ण युवती थीं। वे "गजकुम्भपीनस्तनी"[31] थीं और अपने

---

२८. रामायण ३/४७/४ ।

२९ वही ३/४७/११ ।

३० "प्रतनुविरलै प्रान्तोन्मीलनमजोहर कुन्तलैर्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधतीमुखम्।
ललित ललितैः ज्योत्सना प्रायैरकृत्रिम विभ्रमै-रकृतमधुरैरम्बानां मे कुतूहलमंगकै ।।"
भवभूति उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क/२० ।

३१ जानकीहरणम् ७/२ इ०सं०

"कुम्भप्रतिम" स्तनों[32] के भार के कारण ही "मन्थरविक्रमा" बन गई थीं।[33] इतना ही नहीं, वे गुरुजनों की उपस्थिति में भी अपने पीछे-पीछे चलते हुए "परिवार वर्ग" से सव्याज कुछ कहती हुई अपने "अर्धनिरीक्षित" से हृदयाभिराम राम पर कटाक्ष प्रहार करने की कला में निपुण थीं।[34] उनके अंग "अविभ्रम"[35] न होकर "सविभ्रम" थे।

सीता अपने पति राम से अत्यधिक प्रेम करती थीं। प्रसुप्त राम के प्रबुद्ध हो जाने की आशंका से सीता ने अपने चलकुण्डलों को हाँथ से पकड़कर और 'श्वासवृत्ति' निरुद्धकरके उनके अधरों को धीरे से चूम लिया था।[36] वह रावण के यह कहने पर भी कि "नारी अबला है और आश्रय मिल जाने पर ही उसकी उन्नति होती है।[37] उसके काम जाल में नहीं फँसी। बल्कि पति के विरह में वे-केश संस्कार त्यागकर "एक वेणी" धारण करती थीं।[38]

---

३२. जानकीहरणम् ७/१० ।
३३ वही ६/२० ।
३४ वही ७/२१ ।
३५ भवभूति उत्तररामचरितम् १/२० ।
३६ जानकीहरणम् ८/५१ ।
३७ जानकीहरणम् १०/८८ इ०सं० ।
३८ वही १३/३८ ।

यथा-

"तदीयमरुत्विषी सततचिन्तया विभ्रतं,

मुखेन्दुमवलोकयन् विगलदश्रुणी लोचने।

कपोललुटितालकं व्रजति मार्दवं चेतसि,

क्षपाचरगणः श्रुतं सपदि शल्कमुत्प्रेक्षते।।"

पतिव्रता अंगना जिसके लिए पति का प्रसाद ही समुन्नति के तुल्य है, अपने शील से पति को अवश्य ही "वश्य" बना लेती है, और इस प्रकार गृहस्थ के घर में सुख शान्ति की ऐसी वृष्टि होती है कि समृद्धि के फल लगते हैं और घर मे स्वर्ग उतर जाता है। पतिव्रताओं के प्रखर तेज से असम्भव भी सम्भव बन जाता है, तभी तो राम कहते हैं - हे देवि! तुम्हारे पातिव्रत के तेज न उस निशाचर के प्रभाव का पहिले ही नाश कर दिया था। नहीं तो मनुष्य का छोड़ा हुआ बाण उस त्रैलोक्य को जीतने वाले को कैसे पकड़ में ला सकता है-[३९]

---

३९. जानकीहरणम् २०/६ ।

"पतिव्रतायास्तवदेवि तेजसा हतप्रभावो निहतो निशाचरः।

मनुष्ययुक्तः कथमन्यथा शरः क्रमेत लोकत्रितयस्य जेतरि।।"

सीता शृङ्गारप्रिय थीं। सीता अपने केशों में सुगन्धित तेल लगाती थीं अथवा उन्हें सुरभित करने के लिए किसी अन्य साधन का प्रयोग करती थीं, क्योंकि सन्ध्या होने पर सौध पृष्ठ पर आसीन तथा मन्द पवन सञ्चालित सुरभित केशवाली सीता से राम ने दृश्यमान प्रकृति का वर्णन करना प्रारम्भ किया था।[४०] वह अपने केशों को भलीभाँति बाँध कर रखती थीं। निधुवनकाल में विश्लथ बने केशपाश को बाँधने के लिए बाहु युगल उठाने पर राम द्वारा अपने बाहुमूल के सस्पृह अवलोकन से सीता लजा गयी थी।[४१] रति कलह में परस्पर केशोकेशि संघर्ष के परिणाम स्वरूप राम और सीता - दोनों के केशों के शिथिल हो जाने और तत्रस्थ पुष्पमालाओं के फूल गिरने से सूत्रमात्र रह जाने[४२] के उल्लेख से उक्त सत्य का पोषण होता है। इतना ही नहीं सीता ने "विवृद्धदीप्त" वाला ऐसा "अङ्गद"

---

४०. जानकीहरणम् ८/७५ इ०सं०
४१ वही ८/२२ ।
४२ वही ८/३३ ।

धारण कर रखा था जो राम की दृष्टि में "अनंगदत्व" को प्राप्त हो रहा था-[४३]

"यात्यङ्गदोऽप्येष विवृद्धदीप्तिरनङ्गदत्वं न्यसनेन यत्र।
तथाहि शक्तिर्मदनस्य दाने चारुप्रकोष्ठस्य भुजद्वयस्य।।"

"जानकीहरणम्" महाकाव्य की नायिका सीता संगीतादि ललित कलाओं में निपुण थीं। विदाई में सीता को उसकी प्रिय वीणा का समर्पण इसका प्रमाण है।[४४]

भवभूति के समय की सीता "अमृत वर्तिका" के समान तथा उसका स्पर्श "बहुल चन्दन रस" के समान शैत्यकारी थी।[४५] किन्तु कुमारदास के समय में वही सीता "पुरुषों के धैर्यन्धन को जला देने वाली"[४६] तथा उन पर काम बाणों की वर्षा करने वाली बनी हुई थीं।[४७] जीवन यात्रा के मानव पथिक को उन दिनों नारी के आकर्षण का पाथेय ही पर्याप्त था। "तारातति"[४८] के समान पद

---

४३. जानकीहरणम् ७/१२ ।
४४ वही ९/१५ ।
४५ भवभूति उत्तररामचरितम् १/३८ ।
४६ जानकीहरणम् ७/३ इ०सं०
४७ वही ७/१८ ।
४८ वही ७/७ ।

नखावली, "कुम्भाकार स्तनयुगल"[४९] "आयत नम्रलेखी"[५०] तथा "हरिणी" के से नेत्र[५१] ही तात्कालिक नारी के आकर्षण के विषय थे। "कोकिल का सा कण्ठ"[५२] सोने में सुहागे के तुल्य था। सप्तम सर्ग में सीता के नख-शिख के सौन्दर्य का अवलोकन एवं अष्टम सर्ग में राम एवं सीता का प्रणय व्यापार आदि ऐसे स्थल हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुमारदास ने 'सीता' को वासना पूर्ति के साधन के रूप में चित्रित किया है।

अस्तु, "जानकीहरणम्" महाकाव्य की नायिका सीता उच्चकुलात्पन्न, अप्रतिम सुन्दरी, पूर्णवयस्का, पतिव्रता, शृङ्गारप्रिय, संगीतादि कलाओं में निपुण तथा वासना पूर्ति के साधन के रूप में चित्रित हैं।

---

४९. जानकीहरणम् ७/१० ।
५० वही ७/१५ ।
५१ वही ७/१४ ।
५२ वही ७/१७ ।

:: प्रति नायक रावण ::

रावण विश्रवा और उसकी पत्नी कैकसी से उत्पन्न हुआ था जब यह उत्पन्न हुआ तो इसके दस सिर थे। अतः इसके पिता ने इसका दशग्रीव नामकरण किया।[५३] एक बार कैलाश पर्वत की ऊँचाई के कारण उसके पुष्पक विमान का मार्ग रुक गया तो रावण बोला- "हे वृषभपते रुद्र, तुम्हारे जिस पर्वत के कारण मेरे विमान की गति रुक गई उसे उखाड़ कर मैं फेंक देता हूँ।[५४] यह कहकर रावण ने अपनी भुजाओं को कैलाश के नीचे घुसेड़ कर उठाना चाहा। परन्तु शङ्कर ने बिना किसी प्रयास के अपने पैर के अँगूठे से उस, पर्वत को दबा दिया, जिससे दशग्रीव की भुजायें पिचकने लगीं तो उसने घोर चीत्कार किया। परन्तु दशग्रीव के विनती करने पर शङ्कर ने उसे क्षमा कर दिया और कहा कि, "आज से तुम रावण कहलाओगे।"

रावण "जानकीहरणम्" महाकाव्य का प्रतिनायक है। धनञ्जय के प्रतिनायक के गुणों को स्पष्ट करते हुए

---

५३ वाल्मीकि रामायण उ० ९/३० ।
५४ वही १६-२३ ।

लिखा है- "लोभी, धीरोद्धत, स्तब्ध, पाप करने वाला तथा व्यसनी व्यक्ति (प्रधान नायक का) शत्रु प्रतिनायक होता है।"[७५] रावण राम का प्रतिद्वन्द्वी पात्र है। रावण का चरित्र घमंडी, विलासी, वीर, संगीत प्रेमी, तथा शिव भक्त के रूप में "जानकीहरणम्" महाकाव्य में उपलब्ध होता है।

रावण घमंडी प्रवृत्ति का है। वह कहत है कि जिस रावण की सहायता प्राप्त कर इन्द्र की सेवा पति परित्यक्ता कामिनियों का समूह करता है और जिस पर भान-भष्ट देव-वृन्द चँचर डोलाते रहते हैं तो कामी मनुष्यों की कौन गिनती ? उस रावण को जिसने हस्तिराज को जीत लिया है विष्णु भी नहीं जीत सकते।[७६] इतना ही नहीं वह यह भी कहता है कि युद्ध में कार्तिकेय को एक छोटे बच्चे के समान पकड़कर शरभ के मुख में छोड़ सकता हूँ। मैं सम्पूर्ण त्रिभुवन का संहार करने वाले शिव को तिनके के समान भी नही मानता। पाश धारण करने वाले वरुण को तो मैं पहिले ही जीत चुका हूँ। तब फिर मनुष्यों एवं

---

७५. लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः ।
दशरूपक दि० प्र० ९ ।

७६. जानकीहरणम् १५/६१ इ० सं० ।

वानरों की क्या हस्ती है।[५७] उसकी गर्वोक्ति की पराकाष्ठा तो तब प्राप्त होती है जब वह यह कहता है कि -

"विनोपभोगं भवने भवन्तु सीतादयो मे वशगस्य देव्याः।
अनन्तकोशस्य नृपस्य रत्नं शिखान्तमारोहति किञ्चिदेव।"[५८]

रावण को महाकवि कुमारदास ने विलासी प्रकृति का चित्रित किया है जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। वास्तव में वह युग ही ऐसा था जिसमें वासना के जाल सर्वत्र बिछे पड़े थे। चंचरीक को नलिनी की ललक थी, तितलियों को प्रसून की। रागान्धकार से सन्मार्ग दर्शन अतीव दुष्कर था। वारमुख्यामुखेन्दु पर आसक्त दृष्टिवाले रागी युवक चलते-चलते ठोकर खा जाते थे, और विटगण उन्मुक्त भाव से राजमार्ग पर ही रति प्रार्थना करने लगते थे। तभी तो रावण जब देवताओं की स्त्रियाँ गा रही थी और तुम्बुर की वीणा उनका साथ कर रही थी, तो सहसा कामासक्त होकर उनके साथ रमण किया था।[५९]

---

५७. जानकीहरणम् १५/६२ ।
५८ वही १५/५३ ।
५९ वही १६/६१ ।

यथा-

"सुरयुवतिकदम्बकस्य गीतैरनुगत तुम्बुरुवल्लकी निनादे।

सपदि परिवृतस्समन्मथेन त्रिदशरिपुः प्रमदाजनेन रेमे।।"

रावण तो वीरता की प्रतिमूर्ति है। उत्साह तो उसके अंग-प्रत्यङ्ग में व्याप्त है। अङ्गद के द्वारा यह समझाने पर भी कि सुख भोगने के लिए, धनी पुरुष के कौन सहायक नहीं होते? युद्धभूमि में जब उनका वध होने लगता है, तो साथ देने वाले दुर्लभ होते हैं।[६०] इस प्रत्युत्तर देते हुए कहता है कि "केयूर रत्नकलितांसपीठ" वाली उसकी भुजा पणबन्ध में विश्वास नहीं करती बल्कि "युद्धैकलुब्धा" है।[६१]

यथा-

"दिग्दन्तिदन्तायुधभिन्नरत्नकेयूर बन्धज्वलितांसपीठः।

सोऽयं भुजो मे पणबन्धबुद्धिं युद्ध युद्धैकलब्धो न ददाति कर्तुम्।"

---

६०. जानकीहरणम् १५/१२ इ०सं० ।
६१ वही १५/६० ।

"जानकीहरणम्" महाकाव्य में रावण संगीत प्रेमी के रूप में भी चित्रित है। उसके राजदरबार और सुरतोत्सव की बेला में संगीत का आयोजन होता था। जब अङ्गद रावण की सभा में गये, उस समय किन्नरों द्वारा तन्त्रीवादन पूर्वक गान एवं मेनका का नृत्य हो रहा था। इसी प्रकार रावण की रति केलि के समय सुरयुवतियों द्वारा गीत गायन एवं तुम्बुरु नायक यक्ष द्वारा वीणा वादन वर्णित है"[६२] कुमारदास ने रावण को स्वयं वीणा, धन और वाद्यों को बजाते हुए तथा आठ मुखों से, मन्द, मध्य एवं तार सप्तकों में गाते हुए तथा एक युवती को नचाते हुए वर्णित किया है।[६३]

यथा -

"तत विततघनाद्य वाद्यजातैः निजकरसन्ततिवादितैः स कः।

त्रिविधिकलपरिग्रहेण वक्त्रैर्युवतिमनर्तयताष्टभिश्च गायन।।"

---

६२. जानकीहरणम् १६/६१ इ०सं० ।

६३ वही १६/६३ ।

रावण प्रस्तुत महाकाव्य में शिवभक्त के रूप में चित्रित किया गया है। द्वितीय सर्ग में वह अपने कटे हुए सरों के गोलाकर घावों से शिव की पूजा करते हुए चित्रित है।[६४] किन्तु उसकी शिव भक्ति उस समय खटाई में पड़ जाती है। जब वह पञ्चादश सर्ग में यह कहता है कि "मैं सम्पूर्ण त्रिभुवन का संहार करने वाले शिव को तिनके के समान भी नहीं मानता।"[६५]

अस्तु रावण प्रस्तुत महाकाव्य में घमंडी, विलासी, वीर संगीत प्रेमी तथा शिव भक्त के रूप में चित्रित है। जिसमें उसकी स्वार्थपरता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

---

६४. "तं देवं स शिरच्छेदव्रणचक्रैरपूजयत् ।
नीलकुट्टिमविन्यस्तैर्मण्डलैरिव कौङ्कुमैः।"
जानकीहरणम् २/५० इ०सं० ।

६५ "नो वै मन्ये तृणाय त्रिभुवनमखिलं संहरन्तं हरस्तम् ।"
वही १५/६२ सं०।

:: दशरथ :

महाराज अज के पुत्र दशरथ अयोध्या के राजा थे। महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में दशरथ को आदर्श पिता, आदर्श पति, वीरता की प्रतिमूर्ति, मृगया प्रेमी तथा प्रकृति प्रेमी के रूप में चित्रित किया है।

महाराज दशरथ पुत्र के मुख के दर्शन के लिए अतयन्त लालायित थे। कवि ने दशरथ को पुत्र की इच्छा से सम्पूर्ण विभव द्विजसात् करके यज्ञ करते हुए वर्णित किया है।[६६] प्रथित तपोनिधि ऋष्य-शृङ्ग ने उनसे पुत्र्येष्टि यज्ञ भी कराया था। उन दिनों परिवार पितृ प्रधान थे। पिता ही परिवार का धुरन्धर था। उसकी आज्ञा सर्वमान्य थीं। पुत्र पुत्रियों के लिए उसे अलंध्य समझा जाता था।। विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा हेतु प्रस्थितराम को दशरथ द्वारा अङ्कमाल पूर्वक उपदेश देना आदर्श पिता का ज्वलन्त उदाहरण है।[६७] वे राम से यह भी कहते हैं कि बिना पड़ोसी राजाओं को

---

६६. जानकीहरणम् ४/१ इ०सं०

६७ "तव जीवितसंशयेष्वपि न परित्याज्यमिदं कुलव्रतम् ।
सुलभं प्रतिजन्म जीवितं हृदयं धर्मरतं हि दुर्लभम् ।
वही ४/४२ ।

पराजित किये किसी भी राज्य की सुरक्षा संकट में रहती है क्योंकि वे किसी भी समय आक्रमण करके राज्यापहरण कर सकते हैं।[६८]

यथा-

"अविजित्य जयैषिणां सदा न भुवः शक्यतयानुरक्षितुम्।

ननु दिग्जयसंभृतो महाविभवोऽयं भवतः प्रसंगतः।।"

प्रस्तुत महाकाव्य में दशरथ आदर्श पति के रूप में चित्रित हैं। वे अपनी पत्नियों की सुख सुविधा को सदा ध्यान रखते तथा उनकी प्रसन्नता के लिए विविध चाटुकिरतायें किया करते थे। मृगी के मुख में कोमल तृणांकुर रखने वाले मृग पर राजा दशरथ इसलिए बाण प्रहार न कर पाये, क्योंकि वे स्वयं प्रियानुनय में चाटु-चेष्टाओं के प्रेमी रसिक थे।[६९]

---

६८. जानकीहरणम् ४/३२ ।
६९. वही १/५७ ।

यथा-

"अन्योन्यवक्त्रार्पितपल्लवाग्रग्रासं नृवीरस्य कुरङ्गयुग्यम्।

प्रियानुनीतौ मृशमिष्टचाटुचेष्ट घाताभिरतिं निरासे।।"

महाराज दशरथ में वीरता नस-नस में भरी थी। उनके वीरता के सामने तो 'कटाह' प्रदेश के राजा का पसीना छूटने लगता है।[७०] दक्षिण दिशा का तो उन्होंने वेश्या के समान उपभोग किया था तथा उसी दक्षिण दिशा से उन्होंने तलवार के जोर से खिराज वसूल किया था।[७१] वे अपनी तेज रूपी अग्नि से लक्ष्मी सम्पन्न तुर्कों के राजा जलाते हुए आगे बढ़ रहे थे और उनका यश रूपी सुगन्धित धूम पीछे छूटे हुए देशों को सुरभित जाता था।[७२]

यथा-

"तेजश्छलेनाथ हुताशनेन श्रीवासरम्यं प्रदहन् तुरुष्कम्।

धूपैरिवासक्तगतैर्यशोभिराशीयमन्तं सुरभीचकार।"

---

७०. जानकीहरणम् १/१७ ।
७१ वही १/१८ ।
७२ वही १/२० ।

महराज दशरथ मृगया प्रेमी थे। आखेट करना उनका प्रिय विनोद था। "राजर्षिणां हि लोकेऽस्मिन् रत्यर्थं मृगया वने।"[७३] कहकर वाल्मीकि ने तो इसे राजाओं के विनोदों में सर्वप्रमुख स्थान प्रदान किया है। घट-पूरण की गुड़-गुड़ ध्वनि सुनकर राजा दशरथ ने गज के भ्रम से तमसा नदी में जल भरते हुए श्रवण कुमार को ही बाण-विद्ध कर दिया था।[७४] इतना ही नहीं कवि ने कल्पना की है कि दशरथ के बाण से विद्ध होकर एण मृग पूर्ववेग के कारण ऊपर की ओर इस प्रकार उछला मानों वह स्वर्ग के प्रति प्रस्थित अपने प्राणों की "अनुयात्रा" के लिए वैसा कर रहा है।[७५]

यथा-

"खमुत्पपातैणवरो नृपेण विद्धोऽपि पूर्वाहितवेगवृत्त्या।

स्वर्लोकमन्तःकरणस्य यातुः प्रीत्यानुयात्रामिव कर्तुकामः।।"

---

७३. रामायण २/४९/१६ ।
७४. जानकीहरणम् १/७४ इ०सं० ।
७५. वही १/७६ ।

मृगया प्रायः अश्व पृष्ठ पर आसीन होकर की जाती थी। "रंगत्तुरंग"[७६] राजा दशरथ द्वारा मृग, महिष, द्वीपिन, गण्ड एवं क्रोड़ का आखेट करना और फिर "मृगव्यश्रमसेवितः" हो अपने वाहनभूत अश्व-पृष्ठ से अवरोहण करके "समीरणानर्तितवेतसाग्र" वाले "सरस्तीर" को अलङ्कृत करना[७७] उक्त कथन का प्रमाण है।

महाराज दशरथ के प्रकृति के रोमाञ्चकारी क्रिया कलापों से पूर्णतः परिचित थे। दशरथ के लिए प्रकृति कहीं केसर से रञ्जित गोल स्तन के सदृश शोभायमान होती है,[७८] तो कहीं सोने की तरह तमतमाती हुई उसकी रश्मियाँ सन्ध्या में फैलती हुई नजर आती हैं।[७९]

यथा-

"इयं तनुर्वासससन्धिचारिणी जगत्सृजो विद्रुमभङ्गलोहिनी।

समं विधत्ते मुकुलं सरोरुहैर्हिरण्य बाहोरपि हस्तपङ्कजम्।।"

---

७६. वही १/५३ ।
७७. जानकीहरणम् १/६३ इ० सं०।
७८ वही ३/६४ ।
७९ वही ३/६५ ।

अस्तु महाराज दशरथ महाकाव्य में आदर्श पिता, आदर्श पति, वीरता की प्रतिमूर्ति, मृगया प्रेमी तथा प्रकृति प्रेमी के रूप मे चित्रित हैं।

:: जनक ::

मिथिलाधिपति राजर्षि जनक विदेह के राजा और सीता के पिता थे। इनका नाम सीरध्वज भी था। इनके झंडे में सीर-हल का चिह्न है। जब ये संतोनात्पत्ति के लिए यज्ञ करने के हेतु हल से भूमि जोत रहे थे तब उसमें से पूर्णवयस्का सीता निकली थीं। याज्ञवल्क्य ऋषि इनके पुरोहित और सलाहकार थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि जब भी जनक यज्ञ करते थे तो वे ब्राह्मणों के यज्ञ कराने के अधिकार हो नहीं मानते थे और बिना उनके पौरोहित्य के वे यज्ञादिक करते थे तथा उन यज्ञों में वे सफल रहते थे। इसका कारण यह कहा जाता था कि उनका जीवन इतना शुद्ध और धार्मिक था कि ब्राह्मण के समान थे और राजर्षि थे। जनक और याज्ञवल्क्य ने मिलकर बुद्ध के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था।[८०]

महाकवि कुमारदास ने जनक को आदर्श पिता, के रक्षक तथा धर्मनिष्ठ के रूप में चित्रित किया है।

---

८०. बुद्धचरितम् १/५० ।

महाराज जनक में आदर्श पिता के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे जिस प्रकार "वनौकस" कण्व ने एक "लौकिकज्ञ" की भाँ ति अपनी भर्तृग्रहगंत्री धर्म दुहिता शकुन्तला को "गुरुजनों की सेवा", "सपत्नियों से सखीभाव" "रुष्ट पति के साथ भी अनुकूलाचरण, "परिजनों पर दाक्षिण्य" एवं "भोगों के प्रति अनुत्साह" की शिक्षा दी थी,[८१] उसी प्रकार राजर्षि जनक ने भी सीता को "अभिमान-त्याग" "पति प्रसाद-संग्रह," पति की भर्त्सना पर मौन-साधन," "पतिव्रता भाव" आदि सती व्रतोचित आचरण की शिक्षा देकर विदा किया था।[८२] इतना ही नही सीता के गृहगमन से जनक का सन्तप्त होना[८३] और सीता द्वारा रो-रोकर उनके चरणों को आद्र बनाना[८४] पिता-पुत्री के प्रेम का परिचायक है। यह आदर्श पिता का ही गुण था, जो पिता अपनी कन्या के लिए अच्छे से अच्छा वर चाहता था। जनक का मन साधु वर की प्राप्ति से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न था।[८५]

---

८१. कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् ४/१८
८२. जानकीहरणम् ९/३-९ उ०सं० ।
८३ वही ९/११ ।
८४ वही ९/२ ।
८५ वही ९/११ ।

यथा-

"कृतो वियोगेन शुचः सुमुदभवः समर्पितः साधुतरेण सन्मदः।

मनस्यवस्थाननिमित्तमीशितुः क्षणं विवादानिवतस्य चक्रतुः।।"

महाराज जनक असहाय्यों के रक्षक थे। धनी लोगों से कर लेकर गरीबों को देना।[८६] जो नौकर अपनी युवावस्था में राज्य की सेवा में अगुवा थे। उनके वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर भरण पोषण की व्यवस्था करना।[८७] आपके पराक्रम से विधवा हुई शत्रुओं के स्त्रियों के विधवा होने पर, उनके बच्चों की अपने परिवार की भाँति रक्षा करना इसकी पुष्टि करते हैं।[८८]

यथा-

"त्वद्विक्रमेण वैधव्यं प्रापिता रिपुयोषितः।

बालप्राणार्थिनीः कच्चित्सम्यग्रक्षासि बन्धुवत्।।"

"जानकीहरणम्" में जनक धर्मनिष्ठ के रूप में

---

८६. जानकीहरणम् ६/३८ इ०सं० ।
८७. वही ६/३९ ।
८८ वही ६/४० ।

चित्रित हैं। विश्वामित्र के इस कथन से कि- "सगरादि, आपके पूर्वजों ने, जो यज्ञों के द्वारा धर्माचरण के सूत्र का बराबर अवलम्बन किया था, उसी को आपने ने उपयुक्त रीति से ग्रहण किया है इसकी पुष्टि होती है।[८९] वस्तुतः उनका धर्म, अर्थ और काम से समता रखता था।[९०]

यथा-

"ह्येनादौ त्रिवर्गस्य कच्चिसाम्यं गतश्चिरम्।

धर्मोऽद्य वयसौ वृद्धया सह संवर्द्धते तव।।"

अस्तु महाराज जनक आदर्श पिता, असहाय्यों के रक्षाक तथा धर्मनिष्ठ के रूप में प्रस्तुत काव्य में चित्रित है।

---

८९. जानकीहरणम् ६/३४ इ०सं० ।
९० वही ६/४१ ।

:: लक्ष्मण ::

लक्ष्मण इक्ष्वाकु कुल वंशीय महाराज दशरथ तथा सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये चार भाई थे। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न। लक्ष्मण और शत्रुध्न जुड़ौरा भाई थे।[९१] महाकवि कुमारदास ने लक्ष्मण को प्रस्तुत महाकाव्य में रामभक्त तथा वीरता के गुणों से युक्त चित्रित किया है।

लक्ष्मण अपने बड़े भाई राम के अनन्य भक्त थे। जब विश्वामित्र के साथ राम यज्ञ में विध्नों को दूर करने के लिए प्रस्थित होते हैं तो लक्ष्मण उनके साथ जाने के लिए संहर्ष तैयार होकर चल देते हैं।[९२] इतना ही नहीं लक्ष्मण का राम के राज्याभिषेक के समय उभय पार्श्वों से राम के ऊपर जल की धारा गिराना उनके भक्ति का ही परिचायक है। जब इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज दशरथ ने कमल के समान नेत्र वाले राम को वन में चौदह वर्ष रहने का आदेश दिया, तो वन जाने के लिए अपनी

---

९१. कौशल्या सातिसुखेन रामो प्राक्केकयीतो भरतस्ततोभूत्।
प्रसोष्ट शत्रुध्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन।
भट्टिकाव्य १-१४ ।

९२. जानकीहरणम् ४/४८ इ०सं०।

निष्कलुष पत्नी सीता के साथ, राम जिस फहराती हुई ध्वज से युक्त रथ पर चढ़े थे उसमें सुमित्रानन्दन भी विराजमान थे।[९३]

यथा-

"अनिन्द्यजनिनाऽऽरूढ़ो निर्जगाम रथः पुरः।

कृतप्रस्थानसौमित्रिः स्फुरत्केतुरथो पुरः।"

वीरता से लक्ष्मण ओत प्रोत थे। अष्टादश सर्ग में लक्ष्मण रावण युद्ध इसका प्रमाण है। उनकी वीरता की प्रशंसा करते हुए सुग्रीव कहते हैं- हे वीरों में श्रेष्ठ! क्षमा कीजिए। आपको धनुष खींचने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपकी सर्पराज के समान चमकती हुई भुजायें तो संसार के भय से कातर मनुष्यों का भय दूर करने के लिए है।[९४]

---

९३. जानकीहरणम् १०/४६ इ०सं० ।
९४ वही १२/४१ ।

यथा-

"क्षमस्व वीरप्रवरातिकातरे शरासनाकर्षणकर्म्मणा किमु।

भुजो भुजङ्गाधिपभोगसन्निभो जयत्ययन्ते भुवि भीत भीतिहृत।।"

अस्तु लक्ष्मण का चरित्र राम भक्त तथा वीरता के गुणों से युक्त "जानकीहरणम्" महाकाव्य में चित्रित है।

:: हनुमान ::

हनुमान अञ्जना के गर्भ से पवन के पुत्र थे। कुमारदास ने अपने महाकाव्य में हनुमान को वीर पराक्रमी तथा रामभक्त के रूप में चित्रित किया है। हनुमान अत्यन्त वीर तथा पराक्रमी थे। अङ्गद का यह कहना कि हनुमान तुम बड़े फल देने वाले, ऊँचे स्थान को जाने वाले, अधिक बलशाली को भी रोकने वाले हो।[३५] इतना ही नहीं उनकी वीरता अखण्डित थी।[३६] कालनेमि ने जब हनुमान पर बड़े जोर से आघात किया था, तो वे कालनेमि को परास्त करके पहाड़

---

३५. जानकीहरणम् १८/३५ इ०सं० ।
३६ वही १८/३६ ।

की चोटी उठाकर राम को प्रदान किया था,[९७] जिससे लक्ष्मण की मूर्च्छा समाप्त हुई थी।[९८]

हनुमान राम के अनन्य भक्त थे। उन्होंने सीता का पता लगाने के लिए दक्षिण दिशा लङ्का गये थे,[९९] तथा पता लगाकर उनको सम्पूर्ण जानकारी दी थी। वस्तुतः राम और सुग्रीव की मित्रता हनुमान ने मध्यस्थ बनकर तथा अग्नि को साक्षी बनाकर करायी थी।[१००]

:: अङ्गद ::

अङ्गद बालि का, उसकी पत्नी तारा से उत्पन्न एक मात्र पुत्र था। उसने राम की सहायता के लिए वृहस्पति के अंश से जन्म लिया था। वह बातचीत करने में बड़ा चतुर था। सुग्रीव और बालि के युद्ध में जब बालि, राम के बाण से मारा गया तो मरने के समय उसने राम से अङ्गद की रक्षा की थी।[१०१]

---

९७ वही १९/१ ।
९८ वही १९/२
९९ वही १३/२८
१००. जानकीहरणम् ११/२४ इ०सं० ।
१०१. "बालश्चाकृत बुद्धिश्च एक पुत्राश्च मे प्रियः ।
तारेयो रामभवता रक्षणीयो महाबलः।"

प्रस्तुत महाकाव्य में अङ्गद सभा चतुर तथा वीरता के गुणों से युक्त है।

रावण से युद्ध करने के पूर्व राम ने सभा चतुर अङ्गद को अपना दूत बनाकर भेजा था। वह रावण को समझाता है कि सीता को लौटा देने से राम कृतज्ञ एवं संतुष्ट हो जायेंगे और उनके हृदय का विरोध मिट जायेगा।[१०२] वे यह भी कहते हैं कि जो आपके आज्ञाकारी मंत्री हैं, नये स्वामी की इच्छा रखते हैं। यदि ये लोग भी आपसे कोई नीति विरुद्ध बात करवाना चाहें तो उनकी बात आप न मानें।[१०३] पर उसे समझाने में असफल रहता है।

अङ्गद अत्यन्त वीर थे, जब कुम्भकर्ण के साथ युद्ध में वानर सेना भागने लगती है तो वे हनुमान को प्रोत्साहित करते हैं।[१०४] उनके प्रोत्साहन से भागती हुई वानर सेना लौट आती है।

वा०रा०कि० २८-५३ ।

१०२. जानकीहरणम् १५/२३ इ०सं० ।

१०३. जानकीहरणम् १५/२४ इ०सं० ।

१०४. वही १८/३ ।

:: कौशल्या ::

कौशल्या महाराज दशरथ की पत्नी तथा राम की माँ थी। कुमारदास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में कौशल्या को अनुपम रूपवती, कोमलाङ्गी, सौन्दर्य की मादक मदिरा तथा वासना पूर्ति के साधन के रूप में चित्रित किया है।

मुक्तावितति के समान पद नखावली,[१०५] पृथुलतर श्रोणी,[१०६] उपचीयमान स्तन युगल,[१०७] बालमृणाल नाल-तुल्य बाहुयुगल,[१०८], चन्द्र[१०९] अथवा अरविन्द[११०] के समान, मुखमण्डल तथा मयूर-पुच्छ शोभातिशायी[१११] केश ही कौशल्या के आकर्षण के विषय थे। दन्ती अथवा हंस का सा गति विलास[११२] तो सोने में सुहागे के तुल्य था। "महेन्द्रकल्प" राजा दशरथ की रानी कौशल्या की नखावली के विषय में कवि की कल्पना है कि मानों पूजा

---

१०५. जानकीहरणम् १/२७ इ०सं० ।
१०६ वही १/३० ।
१०७. वही १/३२ ।
१०८. वही १/३५ ।
१०९. वही १/३७ ।
११० वही १/३८ ।
१११ वही १/४१ ।
११२ वही १/२८ ।

के लिए मुक्तावली उसके चरणान्त में बिखेर दी गयी है।[११३]

यथा-

"महेन्द्रकल्पस्य महाय देव्याः स्फुरन्मयूखा सरणिर्नखानाम्।

पादद्वयान्ते जितपद्मकोशे मुक्तेव मुक्तावितितिर्विरेजे।"

कुमारदास की कौशल्य रामायण कालिक कौशल्य की भाँति वह अपने पति की दासी, सखी, पत्नी, बहन और माता[११४] सभी कुछ बनकर पति के समस्त हृदय एवं मस्तिष्क को अपने में केन्द्रीभूत कर लेने में सर्वथा असमर्थ रहती थी। वह सहधर्मचारिणी न बनकर कामपूर्ति का साधन मात्र बन पाती थी। पति के साथ मधुपान, उद्यान विहार एवं जलक्रीड़ा आदि ही मानों उसके जीवन का चरम लक्ष्य था।

दशरथ का क्रीड़ा उद्यान तो एक प्रकार से कामदेव का युद्धस्थल ही था- क्योंकि वहाँ "भास्वत् करों

---

११३. जानकीहरणम् १/२७ इ०सं० ।

११४. "यदा यदा च कौशल्या दासीवत् सखीव वा।
भार्यावद् भगिनिवच्च मातृवच्चोपतिष्ठिति।।"
रामायण २/१२/६८-६९ ।

वाले वीरों" के स्थान पर "भास्वत् करवीर" के वृक्षों का बाहुल्य था तथा "भ्रान्त शिलीमुखों (बाणों) के स्थान पर "भ्रान्त शिलीमुख" (भ्रमर) उड़ते फिरते दृष्टिगोचर हो रहे थे।[११५]

अस्तु कौशल्या के चित्रण में महाकवि कुमारदास को पूर्ण सफलता मिली है।

:: मन्दोदरी ::

मन्दोदरी दैत्यों के विनिर्माता मय दानव की पुत्री थी।[११६] मय ने हेमा नाम की एक अप्सरा से विवाह किया। मन्दोदरी जब छोटी सी थी तो हेमा उसे मय के पास ही छोड़ स्वर्ग चली गई। जब वह पुत्री बड़ी हुई तो मय ने उसका विवाह रावण के साथ कर दिया। कुमारदास ने मन्दोदरी को अनुपम सुन्दरी तथा आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित किया है।

---

११५. जानकीहरणम् ३/१४ इ०सं० ।
११६. जानकीहरणम् १३/३३ इ०सं० ।

मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दर थी। उसकी पतली कमर थी, तथा सुवर्णघट के समान दो स्तन दीप्मिान थे।[११७] रावण की अपनी पत्नी मन्दोदरी की सुन्दरता पर गर्व था। तभी तो वह कहता है कि मैं तो देवी मन्दोदरी के वश में हूँ। सीता ऐसी कितनी (नगण्य) स्त्रियाँ हमारे महल में पड़ी हैं। जिसके पास स्वयं रत्नों का अनन्त कोश है वह किसी खास ही रत्न को सिर पर चढ़ाता है।[११८]

यथा-

"विनोपभोगं भवने भवन्तु सीतादयो में वशगस्य देव्याः।

अनन्तकोशस्य नृपस्य रत्नं शिखान्तमारोहति किञ्चिदेव।।"

रावण के मृत्यु के उपरान्त वह रोती बिलखती रणक्षेत्र में जाती है तथा आदर्श पत्नी की भाँति यह कहते हुए नजर आती है कि त्रिलोक के स्वामी (रावण) की इतनी पत्नियों में क्या एक भी ऐसी सौभाग्यवती नहीं थी जिसके कारण मुझ अभागी को सौभाग्यवती होने का यश मिलता।[११९]

---

११७. वही . १९/३९ ।
११८. वही १५/७९ ।
११९. जानकीहरणम् १९/४२ इ०सं० ।

वस्तुतः मन्दोदरी का यह कथन मर्म के भेदने वाला है। यद्यपि रावण के शरीर में प्राण नहीं रह गया था, फिर भी इस शङ्का से कहीं उसे कष्ट न हो, वह मन्दोदरी, आँसू बहाती हुई, बाणों के किये हुए घाव के छिद्रों को रोकने वाली, जा भूमि पर एकत्रित धूलि थी, उसे अपने काँपते हुए हाथों से धीरे-धीरे हटाने लगती है।[१२०]

यथा-

"प्रियस्य बाणब्रणरन्ध्ररोधिनं महीरजस्संचयमश्रुवर्षिणी।

प्रिया परासोरपि खेदशङ्कया सकम्पहस्ता शनकैरपाहरत्।।

अस्तु मन्दोदरी के चित्रण में कुमारदास को पूर्ण सफलता मिली है।

□□

---

१२०. वही १४/३६ ।

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

प्रकृति चित्रण

क. प्रकृति और मानव का सम्बन्ध:-

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है, जितना कि सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास। प्रकृति माँ की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आँख खोली थी, उसी को क्रोड में खेलकर वह बड़ा हुआ और अन्त में उसी के आलिङ्गन पाश में आबद्ध होकर वह चिर निद्रा में सो गया। प्रकृति के अद्भुत क्रिया-कलापों से उसकी हृदयस्थ भावनाओं भय, विस्मय, प्रेम आदि का स्फुरण हुआ, उसी को नियमितता को देखकर उसके मस्तिष्क में ज्ञान विज्ञान की बुद्धि का विकास हुआ। दार्शनिक दृष्टि से भी प्रकृति और मानव का सम्बन्ध स्थायी है, चिरन्तन है। सत् रूपी प्रकृति, चित् रूपी जीव और आनन्द रूपी परम-तत्त्व तीनो ही मिलकर सच्चिदानन्द परमेश्वर की सत्ता का रूप धारण करते हैं। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों ही दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण करती हुई उसे जीवन में आगे बढ़ाती है।

प्रकृति और काव्य का सम्बन्धः-

मानव और प्रकृति के इस अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है, अतः उस प्रतिबिम्ब से उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बत होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, प्रकृति मानव-हृदय और काव्य के बीच संयोजक का कार्य भी करती रही है। न जाने हमारे कितने ही कवियों को अब तक प्रकृति से काव्य-रचना की प्रेरणा मिलती रहती है। आदि कवि ने प्रकृति के दो सजीव प्राणियों में से एक का वध देखकर इतने आँसू बहाये कि उनसे कितने ही भूर्जपत्र गीले हो गये और वे आज भी गीले हैं। आषाढ़ के प्रथम बादलों को देखकर कवि-कुल शिरोमणि कालिदास तो इतने भावाभिभूत हो गये कि उनकी अनुभूतियाँ 'मेघदूत' का रूप धारण करके बरस पड़ी। हमारे मध्यकालीन कवियों ने अपनी विरह-गाथा सुनाने के लिए प्रकृति की ओट बार-बार ली है। आधुनिक कवियों में भी अनेक को काव्य रचना की प्रेरणा प्रकृति से मिली है। प्रकृति हमारे कवियों के लिए प्रेरणा की स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भंडार, कल्पना का अद्भुत लोक,

अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अटूट शृङ्खला भी रही है।

संस्कृत काव्य में प्रकृति चित्रण:-

विश्व की प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य-ऋग्वेद से ही हमें प्रकृति चित्रण की सुदृढ़ परम्परा प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ में उषा, सूर्य, मरुत, इन्द्र आदि को अलौकिक शक्तियों के रूप में स्वीकार करते हुए, उनके मानवी क्रिया-कलापों का चित्रण किया गया है। मंडूक सूक्त में वर्षा के आगमन और मेढ़को पर उसके आह्लादकारी प्रभाव का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है- "जल की बूँदों से प्रसन्न होकर क्रीड़ा-मग्न मेढ़क एक दूसरे को बधाई-सी देते प्रतीत होते हैं। वर्षा हो जाने पर चितकबरे रंग वाला मेढ़क के साथ उछल-उछल कर उसके स्वर में स्वर मिलाता है, "एक मेढ़क दूसरे मेढ़क की टर्राहट को इस प्रकार दोहराता है जेसे गुरु के शब्दों को शिष्य दोहराता है।"[१] कहना होगा इन पंक्तियों मे वैदिक ऋषि के प्रकृति से निकट सम्बन्ध की व्यन्जना सम्यक् रूप हुई है।

---

१. ऋग्वेद ७/१०३/४ ।

आदि-कवि-वाल्मीकि-प्रकृति के रोमाञ्चकारी प्रभाव से पूर्णतः परिचित थे। राजा कुशनाम की युवती कन्याओं के सौन्दर्य को प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न करते हुए लिखा गया है- "रूप यौवन सम्पन्न वे कन्यायें अलङ्कृत होकर उपवन में गईं। वर्षाकाल की विद्युत के समान वे प्रतीत होती थी।-- अपने अपूर्व रूप से सजी हुई वे सर्वाङ्ग सुन्दरियाँ वाटिका में आकर ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो मेघ से छिपी हुई तारिकाँए हों।"[2]

महाभारत में आकर प्रकृति की अनुपम सौन्दर्य श्री में और भी अधिक अभिवृद्धि हुई है। इसके शकुन्तलोपाख्यान में कण्व ऋषि के आश्रम का एक संश्लिष्ट-चित्रण दृष्टव्य है-

"यह वन पुष्पों से युक्त और वृक्षों से सुशोभित था। उसमें अत्यन्त सुखकारी हरी-हरी घास लहरा रही थी। अनेक सुन्दर पक्षियों के कलरव तथा कोयलों की कूक और झिल्ली की झंकार से वह गुञ्जरित हो रहा था।"[3]

2- वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ३२ ।
3- आदि पर्व ६०/४, ५, ६ ।

परवर्ती संस्कृत साहित्य में तो प्रकृति का चित्रण इतना अधिक हुआ है कि हमें ग्रन्थों में आदि से अन्त तक प्रकृति-सौन्दर्य का निरूपण दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति-चित्रण का कोई ऐसा रूप नहीं, जो संस्कृत के काव्य भण्डार में उपलब्ध नहीं होता। आगे चलकर कालिदास, भारवि, माघ, श्री हर्ष आदि कवियों ने प्रकृति का चित्रण इतने परिमाण में किया कि वह महाकाव्य के एक आवश्यक लक्षण के रूप में स्वीकार कर लिया गया। 'कादम्बरी' और 'दशकुमारचरितम्' जैसी रचनायें भी प्रकृति सौन्दर्य से भरपूर हैं।

जानकीहरणम् में प्रकृति चित्रण:-

कुमारदास का कवि व्यक्तित्व कथा के उपस्थापन, काव्य परम्परा के अनुगमन और काव्य पद्धति एवं शब्दसंहति के प्रयोग में उतना ही उभरा, जितना वर्णनों में प्रयुक्त नवीन कल्पनाओं में उत्तरवर्ती संस्कृत कवियों ने जीवन के अङ्कन, जीवन दर्शन के सम्प्रेषण और कलात्मक सन्तुलन के प्रति अपने को अत्यन्त सावधान नहीं रखा। उदाहरणार्थ व्यास औ वाल्मीकि ने जिस व्यापक पृष्ठभूमि में और जैसी अकृतिम भंगिमा से अपनी रचनाओं में जीवन की

सृष्टि कर दी और एक जीवन दृष्टि भी प्रदान की या कालिदास ने जिस तरह जीवन का परिपक्व सौन्दर्य बोध परिष्कृतम कलापद्धति के माध्यम से व्यक्त किया, संस्कृत के उत्तरकालीन महाकवि से वैसी आशा नहीं की जा सकती। किन्तु उत्तरकालीन कवियों ने वर्णन विधि में कुछ न कुछ नवीन कल्पना जोड़ने की सतत चेष्टा की। इस दृष्टि से कुमारदास के काव्य में निःसन्देह ऐसे वर्णन स्थल हैं, जो उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं। वर्णनों में उन्हें कदाचित् सर्वाधिक सफलता प्रकृति वर्णन में मिली। संस्कृत के कवि ने अपने को अपने चारों ओर के प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जोड़े रखा है। इसलिए उसके लिए प्रकृति जड़ दृश्यावली मात्र नहीं है, वह तो सर्वथा चेतन और उसकी भावनाओं की सहभोक्त्री एं सहानुभवित्री है। कुमारदास की दृष्टि भी ऐसी है, किन्तु प्रकृति के प्रति उनकी दृष्टि में अनूठी कल्पना प्रवणता भी है। उनका प्राकृतिक वर्णन के प्रसङ्ग निम्नलिखित है-

अयोध्या वर्णनः-

अयोध्या कोसल जनपद की एक प्रसिद्ध नगरी तथा सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। यह अतिशय समृद्धि

के कारण अन्य नगरों से श्रेष्ठ थी। कवि की कल्पना है कि यह अपनी समृद्धि के बोझ के कारण पृथ्वी पर चली आयी है तथा उसी शमी वृक्ष की भाँति लगती थी जिसके भीतर क्षत्रिय कुल की अग्नि सन्निहित हो।[४]

महाकवि कुमारदास ने प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक ग्यारह श्लाकों में अयोध्या का सुन्दर वर्णन किया है। कवि की कल्पना है कि बादलों को छूते हुए अयोध्या के प्रासाद अतीव शोभायमान हो रहे थे। इन प्रासादों के शृङ्गो पर चीन के बने हुए शुभ्र वस्त्र से मढ़ी हुई कबूतरों की 'काबुक' रखा हुआ था। ऐसा लगता था जैसे इन 'काबुकों' से टकराने से चन्द्रमा की ऊपरी खाल उधर कर इन काबुकों में चपक गई हो।

यथा-

"चीनांशुकैरभ्रलिहामुदग्रशृङ्गाग्रभागोपहितैर्गृहाणाम्।

विटङ्ककोटिस्खलितेन्द्रसृष्टनिर्मोकपट्टैरिव या बभ्रासे।"

---

४ "आसीदतन्यामतिभोगभाराद्दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या।
क्षत्रानलस्थानशमी समृद्ध्या पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या।।"
जानकीहरणम् १/१ इ०सं० ।

कुमारदास के अनुसार अत्यधिक समृद्धि चारित्रिक दौर्बल्य का हेतु है। परम समृद्धिवती अयोध्या की आड़ में कवि ने अपने समय की नक्तंचारिणी अभिसारिकाओं का वर्णन किया है,[५] जो निशा के मलिन आञ्चल में मुख छिपाकर अपने हृदय-दयित रमणों के समीप जाया करती थीं। किन्तु द्वार-तोरण जटित मणियों के प्रकाश से नैश अन्धकार का विघटित होना जिनके मनोयालिन्य का कारण बनता था।[६]

यथा -

"कृत्वापि सर्वस्य मुंद समृद्ध्या हर्षाय नाभदयिसारिकाणाम्।

निशासु या काञ्चनतोरणस्थरत्नांशुर्भिन्नतमिस्रराशि।"

बसन्त वर्णनः-

महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में बसन्त ऋतु का तृतीय अध्याय में तीसरे श्लोक से लेकर तेरह श्लोक तक सुन्दर एवं मनोरम वर्णन किया है। कवि का कथन है कि बसंत के आविर्भाव पर

---

[5] जानकीहरणम् १/११ इ०सं० ।
[6] वही १/3 ।

प्रकृति में भी शृङ्गार का आविर्भाव हो आता है। प्रकृति का प्रत्येक जीव बसन्त के आगमन से प्रसन्नता का अनुभव करने लगता है। कंटक से भरी हुई, खड़ी नाल के ऊपर अपनी पंखुड़ियों को समेटे हुए नव कमल ऐसा उठ खड़ा होता है जैसे जल के भीतर रहने के कारण रात्रि से भयभीत होकर बसन्त की गरमाहट पानी की इच्छा से बाहर निकल आया हो।[७] बसन्त के आगमन से करवीर वृक्ष की नई-नई रक्त वर्ण की कलियाँ फूटने लगती हैं[८] तो अशोक वृक्ष भी उससे अछूता नहीं रहता, उसके तने में भी नये-नये अंकुर फूटने लगते हैं।[९] कवि का कथन है कि नई कलियों से लदे हुए मनोहर चम्पक वृक्ष ऐसे लगते हैं जैसे बसन्त की वनस्थली ने हजारों बस्तियों के दीपक वृक्ष लगा दिये हों।

यथा-

"वृक्षा मनोज्ञद्युति चम्पकाख्या रूपं वितेनुर्नकुड्मलाढ्याः।

न्यस्ता वसन्तस्य वनथलीभिः सहस्रदीप इन दीपवृक्षाः।।"[१०]

---

७ जानकीहरणम् ३/४ इ०सं० ।
८ वही ३/६ ।
९ वही ३/७ ।
१० वही ३/३ ।

बसन्त के प्रभाव से ही कर्णिकार का वृक्ष पर्वत के शिखर पर अपना सौन्दर्य बिखेरने लगता है।[११] प्रमदाओं की चन्चल आँखों की प्रभा से नई अशोक की पत्तियों में पोढ़ी पत्तियों का सा रंग आने लगता है,[१२] तो भ्रमर भी आम्र के वृक्षों की मन्जरियों को छोड़कर अशोक के वन में पैर रखना उचित नहीं सकझते।[१३] कमलों केवन ने जब यह देखा कि उसके शत्रु, हेमन्त के प्रभाव का बसन्त के सूर्य रश्मियों ने नष्ट कर दिया तो वह प्रेम से दिल खोलकर इस प्रकार हंसता है जैसे उसका काँटा निकल गया हो।[१४] कवि का कथन है कि खिले हुए पुष्पों से विभूषित पलाश का वृक्ष जिसमें पृष्पों से लहलहाती कुछ लता लिपटी हुई थी, ऐसे चमचमा उठा जैसे बसन्त ने कामदेव को जलाने वाली अग्नि की ढेर से भस्म को उधेड़ते हुए कुरेद दिया हो।[१५]

---

११ जानकीहरणम् ३/८ इ०सं० ।
१२ वही ३/७ ।
१३ वही ३/१० ।
१४ वही ३/९ ।
१५ वही ३/११ ।

यथा-

"विनिद्रपुष्पाभरणः पलाशः समुल्लसत्कुन्दलतावनद्धः।

उद्भुतभस्मा मधुनेव रेजे राशीकृतो मन्यथदाहवह्निः।।"

अपने प्रियतम हेमन्त के विछोह से रात्रि जैसे म्लान हो जाने के कारण क्षय होने लगी और दिन भी बसन्त को कड़ी धूप से जैसे थककर क्रमशः मन्दगति से चलने लगता है।[१६]

वर्षा वर्णन

महाकवि कुमारदास ने "जानकीहरणमम्" महाकाव्य में ग्यारहवें सर्ग में श्लोक संख्या ३८ से लेकर ९६ तक वर्षा ऋतु का मनोहारी चित्र खींचा है। वर्षा ऋतु के शुभागमन सं पवन से फैलाया हुआ बादल, सूर्य मण्डल रूपी सिंह के पिंजड़े जैसा, समर के लिए जाते, राजहर्षकारी जयगज का मुकुट सा प्रतीत होता है।[१७] बादलों के मृदङ्ग के

---

१६ जानकीहरणम् ३/१३ इ०सं०।
१७ वही ११/४१ इ०सं०

समान, हृदय को हरने वाले, गंभीर नाद से आह्लादित, चमकीली भौं वाले मयूरों ने वृष्टि के भय से, अपने ऊपर हिलती हुई पूँछ के समूह का चँदोवा कर लिया था।[१८] वर्षा का ही प्रभाव था कि देवराज इन्द्र के धनुष के रञ्जित मेघ समूह उठ आते हैं[१९], तथा बादल के किनारे पर सुवर्ण के समान चमकती हुई बिजली, तारागणों की निगलती हुई सूर्य के किरणों के समप्रभ उदर को चीर कर निकलती हुई शोभायमान लगती है।[२०] कवि की कल्पना है कि समस्त लोक को सन्तप्त करने वाले ग्रीष्म पर विजय का उत्सव छाया है, नाचो मयूरो नाचो।' मानो यह कहते हुए समय ने बिजलियों रूपी सैकड़ों कनकदण्डों से बादल रूपी नगाड़े बजा दिये।[२१]

यथा –

"भुवनातपनघर्म्यजयोत्सवः समुदितः परिनृत्यत बर्हिणः।

इति जघान यथा समयस्तडित्कनकदण्डशतैर्घनदुन्दुभिम्।।"

---

१८ वही ११/४८,
१९ वही ११/५१
२० जानकीहरणम् ११/५२,
२१ वही ११/४३,

आकाश में मेघों के कारण सूर्य बिम्ब, क्रीड़ा कन्दुक के समान दिखने लगती है[२२] तथा आरे की धार के समान लपलपाती बिजली की आघात से रेती हुई, बादल की शाखाओं से गिरी हुई, जल की फुहार बादल के चूर के समान, वायु के वेग से फैल जाती है।[२३] सैकड़ो चाँदी की लम्बी रस्सियों की आकृति की यह निरन्तर गिरती हुई वृष्टि ऐसी लगती थी जैसे पृथ्वी पर गिरते हुए मेघ मण्डल को सैकड़ो, स्फटिकमणि के डंडो से वह धारण किये हो[२४] । महाकवि कुमारदास वर्षा ऋतु के मृदु ही नहीं वरन् तीखे रूपों को भी देखा है उनका कथन है कि समुद्र का जल अत्यधिक पी जाने के कारण, बोझ से पेट फट जाने से बाहर निकल पड़ी हुई, बहते रुधिर के समान, लाल अँतड़ियो के सदृश, बिजलियाँ आकाश में फैल गयी।[२५]

यथा -

"जलधिवारि नपीतवतो भ्रशं वनमुचो रुधिरस्रक्लोहिता:।

अतिभरस्फुटितोदरनिर्गता बभुरिवान्तलता दिवि विद्युत:।।"

---

२२ वही ११/६८,
२३ वही ११/७०
२४ वही ११/७८
२५ जानकीहरणम् ११/५८ इ०सं०।

अस्तु वर्षा-वर्णन उनके ऋतु वर्णनों का सुन्दर प्रतिनिधि है।

शरद् वर्णन

कुमारदास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में बारहवें सर्ग में प्रथम से बीस श्लोक तक शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन किया है। शरद् ऋतु में जहाँ पर्वत के नीचे, पानके नितान्त अभाव से चावल के खेत सूख गये थे,[२६] वहीं सरोवर ने हंस गान के समय शास्त्र मतानुसार, लय के साथ, अपनें कमलहस्त की चमकती हुई पल्लवाङ्गुलियों से मानो समपरिमित ताल दे रहा था।[२७] शरद् ऋतु में शुक्रों की पंक्ति अपनी प्रभा से इन्द्रधनुष की प्रतिरूपता करती है,[२८] तथा हंस वायु के सहारे दूर दूर तक फैले नजर आते है।[२९] कवि का कथन है कि नये कल नाल के समान श्वेत, शरद् ऋतु में धारा प्रवाह के समान

---

२६ वही १२/५

२७ जानकीहरणम् १२/७ इं०सं०।

२८ वही १२/१५,

२९ वही १२/१६,

फेंका हुआ, बादलों का समूह, ऐसा लगता था, जैसे इन्द्रधनुष से धन का हुआ दिगाङ्गनाओं का ढेर हो[३०]–

"विभान्त्ययी बालमृणालपाण्डुरा विसृष्टधारा शरदभ्रसञ्चयाः।

सुरेन्द्र चापेन विधूय सञ्चिता दिगङ्गनानामिव तूलराशयः।।"

शरद् ऋतु के प्रभाव से ही नदी तट पर जल में धान के पौधे सोच के मारे पीले पड़ जाते हैं तथा आने वाले दुर्निवार तोतों के मुख के भय से, जैसे चिन्ता से उनके मस्तक झुक जाते हैं।[३१] इतना ही नहीं चमकती हुई कमलों की पंक्ति ने शरद्घन के जल पड़ने से शीतल, अपने पत्तों के समूह को तरुण सूर्य की किरणों से जैसे सुखाने के लिए फैला दिया।[३२] कवि का कथन है कि सारस ने अपनी चोंच से पीड़ित कर, कमल की कली को बलापूर्वक उसी प्रकार खोला जैसे – लज्जा से ढाके हुए, कम उम्र वाली पत्नी के सुगन्धित मुख को, पति बड़े यत्न से खोलता है[३३]–

३० वही १२/१४,
३१ वही १२/१८,
३२ जानकीहरणम् १२/२० इ०सं०।
३३ वही १२/१०,

"निपीडथ चञ्चता कमलस्य कुड्मलं निबोध्यामास बलेन सारसः।
सुगन्धिगर्भ मुकुलीकृतं ह्रिया पतिः प्रयत्नादिव कन्यकामुखम्।।"

अस्तु कुमारदास का शरद् वर्णन मनोरम तथा सुखकारी है।

सूर्योदय का वर्णन

कुमारदास ने सूर्योदय का वर्णन अत्यल्प किया है। उन्होंने प्रथम सर्ग के ६९ वें, तृतीय सर्ग के ७८वें तथा सोलहवें सर्ग के ७१वें श्लोक में सूर्योदय का वर्णन किया है। "रीति समाप्त हो चुकी, चन्द्रदेव अस्ताचल को चले गये। हे मुकुलित मयलाक्षी। तू क्या अब तक सो रही है।" यह कहकर क्रीड़ोधान तक फैली हुई सरसी को जगाने के लिए यह तरूण सूर्य अपने आताभ्रकरों से थपकियाँ दे रहा है[३४]-

"विरामः शर्वर्या हिमरूचिरवाप्तोडस्तशिखरं
किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताम्भोरूहदृशः
इतीवायं भानुः प्रमदवनपर्यन्तसरसी
करेणाताभ्रेण प्रहरित विबोधाय तरूणः।"

---

३४ जानकीहरणम् १२/७८ इ०रां०।

कवि ने उपर्युक्त श्लोक में सूर्योदय का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है, वस्तुतः यह श्लोक संस्कृत साहित्य का अनमोल रत्न है।

सूर्यास्त का वर्णन

महाकवि कुमारदास नें अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में सूर्यास्त का वर्णन विस्तार से किया गया है। उन्होंने महाकाव्य के तृतीय सर्ग के ६४, ६५, ६६ श्लोकों में तथा सोलहवें सर्ग के दूसरे, तीसरे तथा छंठवे श्लोक में किया है। कवि ने जहाँ एक ओर सूर्य को स्त्रियों के केसर से रञ्जित गोलस्तन के सदृश शोभायमान परदेशियों के चित्त में तपन छोड़कर , तरङ्गों से आन्दोलित पश्चिमी समुद्रान्त में डूबते हुए चित्रित किया है,[३५] तो वहीं दूसरी ओर फूट मूँगे के सदृश लाल वह सूर्य कमल की पंखुड़ियो की तहर अपने कमल के समान हाथ सिकोड़ते हुए नजर आता है।[३६] इतने में ही उनकी लेखनी सन्तुष्ट

---

३५ जानकीहरणम् ३/६४ इ०सं० ।
३६ वही ३/६५ ।

नहीं होती बल्कि अत्यन्त मनोहर वर्णन करती है। ढाल पर अरूण, (सूर्य का सारथी) ने बड़ी दृढ़ता से अपने हाथों से रास को खींचा जिसके कारण घोड़ो के कन्धे झुक गये और उनके सुन्दर नथुने तिरछे हो गये, इस प्रकार सूर्य के घोड़े, पहाड़ की चोटी से नीचे उतरे और उतरते समय रथ के पहिए उनके जाँघों से सट गये।[३७]

"अरूण करदृढावकृष्टरश्मि प्रणामितकन्धरमुग्नचारूघोणा।

दिवस करहया गिरीन्द्रभितेर्जघनपतद्रथनेमयो वतेरू:।।"

इतना ही नहीं सूर्य समुद्र में डूबकर, छिटकी हुई अपनी किरणों के अग्रभाग से यह दिखलाता है कि जल की इतनी गहराई है।[३८] तो वहीं घने अन्धकार से परिवेष्टित हो जाने के कारण, जैसे भ्रमरों के समूह ने उसे घेर लिया हो, सूर्य भागने की इच्छा से ड़ौल लगाकर पानी में डूब जाता है।[३९] महाकवि कुमारदास ने अनूठी कल्पनाओं के द्वारा प्रकृति के उपादानों में मानवीय कार्य व्यापारों कके मार्मिक दर्शन कराये हैं। 'जल्दी निकल भागो' सूर्यास्त हो गया, कमलों पर उनकी पंखुड़ी रूपी अर्गला बन्द हो रही

३७ वही १६/२ ।
३८ वही ३/६६ ।
३९ जानकीहरणम् १६/३ इ०सं०।

है- यह चेतावनी भ्रमर-समूह को सुनाता-सा भ्रृङ्ग सरसी पर इधर-उधर चक्कर लगाने लगा[४०]-

"द्रुतमपसरतैति भानुरस्तं सरसिरूहेणु दलार्गला पतन्ति।

भ्रमरकुलमिति ब्रुवन्निवालिः क्वलिणकलं विचचार दीर्घिकायाम्।।"

वस्तुतः सूर्यास्त का यह वर्णन कवि की प्रतीभा पर चाँ दलगा दिया।

सन्ध्या वर्णन

कुमारदास ने "जानकीहरणम्" महाकाव्य में आठवें सर्ग के श्लोक संख्या ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२ तथा सोलहवें सर्ग के ४, ५, ८, ९, १०, ११, १३ में सन्ध्या वर्णन किय है। समुद्र के बीच में स्थित सूर्य के बिम्ब को अन्धकार का जाल घेरता है,[४१] तो पूर्ण चन्द्र के उदय होनें पर अस्ताचल पर अस्त होता हुआ सूर्य का बिम्ब, आकाश रूपी रथ का एक ऐसा पहिया लगता है जिसका घेरा धातुओं के चूर्ण से लिप्त हो।[४२] सन्ध्या ने तो

४० वही १६/६.
४१ जानकीहरणम् ८/५९ ३०सं०।
४२ वही ८/६०.

भ्रमरों के झुण्डों को भी शंका में डाल दिया है वे ऐसे कुमुद को देखकर जो पहिले लाल था, किन्तु अन्धकार के कारण श्यामल हो गया है निर्णय करनें में अपने को असमर्थ पाते हैं कि यह लाल कमल है या नील कमल ।[४३] सन्ध्या ने तो पहले अन्धकार का रूप ग्रहण किया। फिर अतिव पिंगल वर्ण तारिकाओं का सृजन किया तद्नन्तर अपनी कलाओं के द्वारा चन्द्रमा से सम्पूर्ण भवन का एकीकरण किया। इस प्रकार उसने त्रिनेत्र (शिव) का रूप धारण किया।[४४]

यथा-

"प्रथम गमितमन्थकारिभावं पुनरतिपिङ्गलतारंक विधाय।

भुवनमथ कलात्मा समस्य त्रिनयनरूपमलम्भयत्प्रदोषः।।"

सन्ध्या के समय, सूर्य के ढल जाने पर, लाल लाल तारों से व्याप्त आकाश, रावण के हृदय की भाँति लगता था,[४५] तो सूर्य डर से छिपा हुआ चन्द्रमा, जो समुद्र के जल के भीतर था जब सन्ध्या हो जाने पर यह जानने के लिए कि सूर्य चला गया या नहीं, अपने किरणों को बाहर

---

४३ वही १६/४,
४४ वही १६/१०,
४५ जानकीहरणम् १६/८ इ०सं०।

निकालकर आकाश में चारों ओर फेरने लगता है।[४६] दिशायें तो बार-बार यह देखकर कि सन्ध्या तो बड़ा धोखेबाज प्रेमी है। जैसे मारे गुस्से के विवर्ण हो जाती है और अपने स्तनों (श्लेष बादलों) पर विलास करत हुए चित्रण के ही मिटा देती है।[४७]

यथा-

"शठमिवदयितं दिश प्रदोषं महुरधिगम्य रुषेव भिन्नवर्णाः।

स्थितिमुपरिपयोधरस्य सन्ध्याविलासितकुङ्कुममण्डन ममार्जुः।।"

अस्तु कुमारदास का सन्ध्या वर्णन अत्यन्त मनोरथ तथा हृदयहारी है।

चन्द्रोदय का वर्णन

कुमारदास ने "जानकीहरणम्" महाकाव्य में सोलहवें सर्ग के पन्द्रह, सत्रह, अट्ठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाइस, तेइस, चौबीस, तथा पच्चीस श्लोकों में चन्द्रोदय का सुन्दर वर्णन किया है। चन्द्रमा अपने उदय के

---

४६ वही १६/९.
४७ वही १६/१३.

द्वारा न केवल सुन्दर नितम्ब वाली स्त्रियों के हृदय में एक नये निर्झर की शंका उत्पन्न कर उनमें काम का सञ्चार करता है,[४८] अपितु पथिकों की विरहिणी की आँखे जो पहिले माणिक्य की प्रभा की तरह लाल थीं, चन्द्रोदय होने पर उसकी किरणों के घिर जाने के कारण वे चन्द्रकान्तमणि के स्वाभाविक काम को दिखलाने लगती हैं।[४९] कवि की कल्पना है कि "इन निशाचरियों के अनुपम मुखों की कानित से हमी केवल नही हारे हैं। देखो यह मृग भी उनके कटाक्षों से हार गया है" ऐसा कहता हुआ वह चन्द्रमा जैसे दुनियाँ को अपने मृगाङ्क को दिखला रहा है-[५०]

"द्युतिभिरवजितो निशाचरीणामहमतुलस्य न केवलं मुखस्य।

अयमपि हरिणो जितः कटाक्षैरति जगतमिव दर्शयन मृगाङ्कम्।"

---

४८ जानकीहरणम् १६/१९. इ०स०।
४९ वही १६/२४,
५० वही १६/१८,

रात्रि वर्णन

महाकवि कुमारदास ने "जानकीहरणम' महाकाव्य में आठवें सर्ग के श्लोक संख्या ६६ से लेकर ९२ तक रात्रि का मनोरम चित्र खींचा है। मत्त मयूर की कण्ठ की तरह रंग विरंगा आकाश,[५१] पूर्व दिशा में दमकते हुए चन्द्रमा का निकलना[५२] तथा पश्चिम के आकाश में लाल लाल तारों का इस प्रकार लगना जैसे सूर्य के रथ की लोहे की पहिए की टक्कर से मेरु के शृङ्ग से आग की चिनगारियाँ निकल रही हों।[५३] सूर्य के भय से अपनी आखें बन्द की हुई तारिकायें सूर्य की रश्मियों के चले जाने से दिशा के मुख को सजाने के लिए खोखली हुई नजर आती हैं।[५४] चन्द्रमा अपनी किरणों को चारों ओर पेड़ों के रन्ध्रों में इसलिए छोड़ता है ताकि वह लता मण्डपों में घुसे हुए मृङ्ग के समान काले अन्धकार को खींचकर निकाल सके।[५५] कवि की कल्पना है कि चाँदी के टुकड़ों के समान चमकते हुए तारे ऐसे शोभायमान हैं जैसे उदयाचल से उदय होते हुए

---

५१ जानकीहरणम् ८/६६ इ०सं०।
५२ वही ८/६७.
५३ वही ८/६८.
५४ वही ८/६९.
५५ वही ८/७९.

गृहपति चन्द्रमा के मार्ग में दिग्वधुओं ने चारों ओर लाजा बिखेरा हो।[५६]

यथा-

"तारका रजतभङ्गभासुरा लाजका का विभान्ति तानिता:।

दिग्वधुभिरुदयादुदेष्यतो वत्मनि गृहपते:समन्तत:।।"

खरहे से अङ्कित चन्द्रमा काले मेघों के भीतर से धीरे-धीरे निकलते हुए ऐसा लगता है, जैसे उसमें काले मेघ का एक टुकड़ा बीच मे लगा रह गया हो।[५७] चन्द्रमा की किरणों से अन्धकार का नष्ट होना फिर भी साते हुए कोकिल के परिवार में और उत्फुल्ल कौमुद की सुगन्ध से आकृष्ट उस पर बैठे हुए मृङ्गो में अन्धकार का अवशिष्ट रहना कवि की प्रतिभा का ही परिचायक है।[५८] कवि की प्रतिभा इतने में ही विराम नहीं लेती अपितु वह और आगे बढ़ जाती है। कुमुद के फूलने पर उसके भीतर भ्रङ्ग, निकलकर इधर उधर ऐसे गिरने लगते हैं जैसे चन्द्रमा से चूर किये गये अन्धकार की बूंदे आकाश से गिर रही हों।[५९]

५६, जानकीहरणम् ८/८३ इ०सं०।
५७ वही ८/९०.
५८ वही ८/८०.
५९ वही ८/८२.

यथा-

"उल्लसत्सु कुमुदेषु षटपदाः संपतन्ति परितो हिमांशुना।

भिद्यमानतमसो नभस्तलाद्विच्युता इव तमिस्रबिन्दवः।।"

अस्तु कुमारदास का रात्रि वर्णन अत्यधिक मनोहारी है।

जल विहार का वर्णन

जल क्रीड़ा भारत के प्राचीन मनोविनोद के साधनों में एक है। महाकवि कुमारदास ने "जानकीहरणम्" महाकाव्य में तृतीय सर्ग के बत्तीस से लेकर अट्ठावन श्लोकों तक जल विहार का सुन्दर वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतुत में समागमोपरान्त विशेषतः जल क्रीड़ा का प्रचलन था। दुराराध्य स्वभाव वाले रावण को सेवा से सन्तुष्ट करने की इच्छा से "ग्रीष्म" उसके "जल क्रीड़ा-दिन" की प्रतिज्ञा करता हुआ वर्णित है।[६०] इससे ध्वनित होता है कि राजागण अपने व्यस्त जीवन में भी किसी दिन पूर्ण अवकाश ग्रहण

---

६० जानकीहरणम् २/६५, इ०सं०।

करके आमोद-प्रमोद में निमग्न का जाते थे। रति के अनन्तर राम और सीता ने "दीर्घिका-जल तरङ्गों" का सुखोपभोग किया था।[६१] कमलों का पराग जाल तो दशरथ की युवतियों की क्रीड़ा से आलोडित होने के कारण बहुत क्षुब्ध हो गया। नव कमलों से भरा हुआ उस सरोवर का जल ऐसे चमकने लगा जैसे वह युवतियों की कुसुम्भी काञ्चुकी से निचोडकर निकाला गया हो।[६२]

यथा-

"क्रीड़ापरिक्षोभरयेण तासामुत्सरिते पङ्कजरेणुजाले।

कुसुम्भरक्तादिव कञ्चुकातत् कृष्टं बभासेऽम्बुरुहाकराम्भ्यः।।'

जलाशय में नियञ्जित हो जल की गहराई का मापन,[६३] ईषत्, प्रबुद्ध कुशेशय के कोश मे मुखन्यास के कारण निरुद्ध दृष्टि वाले कलहंसशावक का स्पर्श करने के अभिप्राय: से नि:शब्द संतरण,[६४] "बाला परिष्वंग सुख" के लिए पति का "अन्तर्जलावारितभूर्ति" होकर उपसर्पण,[६५] एक

---

६१ वही ८/३४.
६२ जानकीहरणम् ३/३६ इ०सं०
६३ वही ३/६६.
६४ वही ३/४९.
६५ वही ३/३८.

दूसरे पर जल का प्रक्षेप,[६६] बन्दीकृत भ्रमर वाले, मुकलित सरोज का सदण्ड उत्पादित करके प्रिय के कान में तज्जन्य कूजन-करण[६७] आदि अनेक विलास जल-केलि-रत जनों की सुख-समृद्धि का संवर्धन करते थे।

उद्यान विहार का वर्णन

महाकवि कुमार दास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरणम्" में तृतीय सर्ग के चौदह से लेकर इक्तीस तक उद्यान विहार का मनोहारी चित्र खींचा है। प्रायः प्रत्येक समृद्ध व्यक्ति के आवास गृह से संलग्न एक उद्यान हुआ करता था, जिसे कवि ने "गृहोद्यान" कहा है। उसमें "रहो विहार" (एकान्त लीलाओं) के लिए "लतागृहों" का होना अनिवार्य था। "रामानुगत" दशरथ द्वारा "विहंगपक्षानिलनर्तित पल्लवों" और उद्भ्रान्त भृंगो वाले "लतागृहों" का अपने "रहोविहारों" से सम्भावित करना वर्णित है।[६८]

---

६६ वही ३/५६.
६७ वही ३/५७.
६८ जानकीहरणम् ३/१५.

उक्त लतामण्डपों में पत्नी द्वारा पुष्प चुनने,[६९] पति द्वारा उसके चरणों में यावक लगानें,[७०] कान में अशोक-प्रवाल अवतंस के रूप में पहनाने,[७१] तथा अन्य शृङ्गार लीलायें[७२] करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

इन वर्णनों के अतिरिक्त कवि ने सेतु बन्धन का वर्णन, तपोवन का वर्णन, आश्रय का वर्णन, पर्वत की शोभा का वर्णन, राक्षसियों के केलि का वर्णन आदि रूपों में भी प्रकृति चित्रण किया है।

❑❑

---

६९ वही ३/१७.
७० वही ३/१८.
७१ वही ३/३४.
७२ वही ३/१९-२०.

पंचम अध्याय

पञ्चम् अध्याय

अलङ्कार निरूपण

संस्कृत काव्यशास्त्र में अलङ्कार:-

प्राचीन काल में अलङ्कार काव्य का प्रमुख तत्व माना जाता रहा है तथा काव्य में सौन्दर्य एवं चमत्कार अलङ्कार की देन समझे जाते रहे हैं। यथा-'सौन्दर्यम् अलङ्कार', 'अलङ्कृत: अलङ्कार' आदि कथन इस बात को प्रमाणित करते हैं। रसवादी और ध्वनिवादी आचार्यो ने अलङ्कारों को काव्यशरीर शब्द और अर्थ के शोभाधायक तत्व के रूप में स्वीकार किया है, तथा शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार एवं उभयालङ्कार का विवेचन जिस प्रकार रीतिवादी आचार्यो ने विस्तार से किया है, उसी प्रकार रसवादी तथा ध्वनिवादी आचार्यो ने भी इसका विशद विवेचन किया है। वस्तुत: अलङ्कार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आधार व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।

"जानकीहरणम्" महाकाव्य में अलङ्कारों का स्वरूप:-

महाकवि कुमारदास वैदर्भी रीति के कवि वाल्मीकि तथा कालिदास आदि के अनुयायी हैं, अतः उनका अलङ्कार विधान रसोपकारक है। अलङ्कार प्रेमी होते हुए भी उन्होंने अलङ्कारों का प्रयोग मात्र प्रदर्शन के लिए नही किया है। अपितु अपनी वर्णनात्मक शैली की आवश्यकता के आधार पर किया है।

शब्दालङ्कार:-

अनुप्रास अलङ्कार:-

वर्णो की समानता को अनुप्रास कहते है- "वर्णसाम्यमनुप्रास:।"[१]

यथा-

"आसीदवन्यामतिभोगभाराद्दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या।

क्षत्रानलस्थानशमी समृद्ध्या पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या।।"[२]

---

१ काव्यप्रकाश ९/१०३ आचार्य मम्मट ।

२ जानकीहरणम् १/१ इ०सं० ।

उपर्युक्त श्लोक एकाक्षर आवृत्ति का उदाहरण है।

यद्यपि इसके भेद प्रभेदों का कवि ने प्रयोग किया है, किन्तु अन्त्यानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास के प्रति उनका विशेष अनुराग है। अनुप्रास के प्रयोग में कवि ने प्रायः ब, व, श, ष, नु, ण, आदि में भेद नहीं किया है।

अन्त्यानुप्रास का उदाहरण-

"कान्तिश्रिया निर्जितपद्मरागं मनोज्ञगन्धं द्वयमेव शस्तम्।

नवप्रबद्धं जलजं जलेषु स्थलेषु तस्या वदनारविन्दम्।।"[3]

वृत्यनुप्रासः-

'एक वर्ण का तथा अपि' शब्द के प्रयोग से अनेक व्यञ्जनों का एक बार अथवा बहुत बार का सादृश्य होने पर वृत्यनुप्रास होता है- "एकस्याप्यसकृत्परः।"[४]

यथा-

३. जानकीहरणम् १/३८ ।
४. काव्य प्रकाश ९/१०६ आचार्य मम्मट ।

व्रती विनाथो विगतापराधः।[५]

\+ + + +

चकार चक्रीकृतचापदण्डः ।[६]

जानकीहरणम् महाकाव्य में छेकानुप्रास का प्रयोग भी महाकवि ने किया है यथा-

"भोज्याः सुतश्चारुभुजद्वयेन घटं गृहीत्वा घटितरिनाशः।

वाष्पायमाणो बहुमानपात्रं यमप्रभातो यमिनां ददर्श।"[७]

अस्तु महाकवि का अनुप्रास पर विशेष स्नेह है, किन्तु वह कृत्रिमता की सीमा तक नही पँहुचा है।

यमक अलङ्कारः-

अर्थ होनें पर, भिन्नार्थक वर्णो की उसी क्रम से पुनः श्रवण यमक अलङ्कार कहलाता है।[८]

---

५. जानकीहरणम् १/७९ इ०सं० ।

६. जानकीहरणम् १/६२ ।

७. वही १/८५ ।

८. "अर्थ सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति।"

काव्यप्रकाश ९!११६ आचार्य मम्मट ।

यथा-

"निनदता नदताडितमेखलं विगलताऽगलतावृतसानुना।

असुभुजा सुभुजाऽसुरसंहतिः प्रविदिता विदिता दिशि भूभृता।"[९]

पद और उसके एकदेश आदि में रहने से वह यमक अनेक प्रकार का हो जाता है।[१०]

पाद यमक:-

"दधानौ नृपती खिन्न शतधा मनसी तया।

दृष्टौ विवशयाऽनार्तिशतधाम न सीतया।"[११]

पदादि यमक:-

"विराजं तमिदं दीप्त्या विराजन्तं स्मृतिक्षणे।

सदृसन्नासितो भ्रात्रा सहसन्नास्पदागतम्।।"[१२]

श्लोकान्तर्गत पदों के आदि में दो या दो से अधिक बार आवृत्ति होने पर मदमध्य यमक तथा अन्त में आवृत्ति होने पर पदान्त यमक अलङ्कार होता है।

---

९. जानकीहरणम् १४/४४ इ०सं० ।
१०. 'पादद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम्।" का०प्र० ९/११७ ।
११. जानकीहरणम् १४/९ ।
१२. वही १४/१० ।

पदमध्य यमक:-

"अतनुना तनुना धनदारुभि: स्मरहितं रहितं प्रदिधक्षुणा।

रुचिरभा चिरभासितवर्त्मना प्रखचिता खचिताननदीपिता।।[१३]

पदान्त यमक:-

"यथा भवन्तो मयि धीरतारता: हिताह्वयं प्रेमसुशीभरंभरम्।

वहन्ति नैवं जननी सती सती प्रियात्मजो नाप्यनुकम्पिता पिता।।"[१४]

इसके साथ ही महायमक अलङ्कार खचित निम्नलिखित श्लोक महाकवि कुमारदास की अलङ्कार प्रयोग कुशलता का द्योतक है। महायमक में चारों चरण समान होते हैं।

यथा-

"चक्रे रणं वानर-का-न्तकारी, चक्रे रण-न्वा-नर-कान्त-कारी।

चक्रे रणं वा-नरका-न्तकारी, चक्रे, रणन्वानर-कान्त-कारी।"[१५]

---

१३. जानकीहरणम् ११/४५ इ०सं० ।
१४. जानकीहरणम् ११/४५ इ०सं० ।
१५. वही १७/४ ।

इसके अतिरिक्त महाकवि ने अष्टादश सर्ग के इकहत्तरवें श्लोक में ममकावलि का सुन्दर प्रयोग किया है।

श्लेष अलङ्कारः-

अर्थ का भेद होने से, भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं, तब वह श्लेष रूप शब्दालङ्कार होता है। वह वर्ण, प्रत्यय, लिङ्ग, प्रकृति पद, विभक्ति, वचन तथा भाषा आदि भेदों से आठ प्रकार का होता है।[१६]

यथा-

"बलिप्रतापापहविक्रमेण त्रैलोक्यदुर्लङ्घ्यसुदर्शनेन।

नानन्तभोगाश्रयिणाऽपि तेने तेनालसत्वं पुरुषोत्तमेन्।"[१७]

उपर्युक्त उदाहरण में बलि, सुदर्शन तथा अनन्तभोगाश्रयिणा आदि श्लिष्ट पद विष्णु एवं दशरथ दोनों पर ही घटित होते हैं।

---

१६. "वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः ।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।"
काव्यप्र० ९/११८ ।

१७. जानकीहरणम् १/१५

बलि - राजा बलि, कर एवं उपहार।

सुदर्शन - सुदर्शन चक्र, देखने में सुन्दर ।

अनन्तभोगाश्रयिणा - अनन्तसर्पशायी, अनन्तसुख का भोगने वाला।

चित्रालङ्कार:-

जहाँ वर्णों की खड्ग आदि की आकृति का हेतु हो जाती है, वह 'चित्र' नामक शब्दालङ्कार कहलाता है।[१८]

यथा-

"कि यासि कपिहास्यारहामी तत्राहमाकुक:।

हसानिरमयाकाशं स तीक्ष्य रणमार्गलम् ।।[१९]

पतत्सु राघवे वैरितिशखेष्व विशङ्कितम्।

पौरुषस्यापरं कालं कि सौमित्रिरुदीक्षते।।"[२०]

चित्रालङ्कार पाण्डित्य-प्रदर्शन-प्रेमी कवियों का प्रिय विषय रहा है। भारवि तथा माघ आदि महाकवियों में

---

१८. "तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता।"
काव्य प्रकाश ९/१२०

१९. जानकीहरणम् १८/३२-३३ इ०सं० ।

२०. जानकीहरणम् १८/३२-३३ इ०सं० ।

इस प्रवृत्ति के उदाहरण उपलब्ध होते है। महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य में चित्रालङ्कार के अनेक उदाहरण सफलता के साथ प्रस्तुत किये हैं जिससे उनकी दक्षता सिद्ध होती है, यद्यपि साहित्य शास्त्रियों ने इसी उपेक्षा की है-

"ये चित्रकाव्य रस के तो कुछ उपकारक होते नही,

क्योंकि शीघ्रता से इनके अर्थ का पता नही लगता, प्रत्युत रसात्मक काव्य के भारभूत ही होते हैं।"[२१]

शब्दालङ्कार का प्रयोग एवं समीक्षा:-

महाकवि कुमारदास ने शब्दालङ्कारों का प्रयोग काव्यसौन्दर्य एवं अर्थ पुष्टि के लिए किया है। अलङ्कारों के द्वारा शब्द सौन्दर्य में वृद्धि के अभिलाषी महाकवि ने अपनी कृति में यमक, गुरजबन्ध, सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, वक्रवृत्त आदि का सफल प्रयोग किया है। अष्टादश सर्ग में चित्रालङ्कारों एवं चित्रबन्धों का तूडान्त निदर्शन है।

---

२१. साहित्य दर्पण, पृ०सं० २९१, विमला, हिन्दी व्याख्या सहित, श्री पं० शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।

अर्थालङ्कार

उपमा अलङ्कार:-

उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है।[२२]

यथा-

मूर्त पदार्थ का मूर्त पदार्थ से-

"सव्यापसव्यभागस्थपाञ्चजन्यसुदर्शनम्।

तटद्वयस्थचन्द्रार्कविन्ध्यशैलविमवच्छि त्रम्।"[२३]

मालोपमा-

"येन दुर्वारवीर्येण सागराम्बरचन्द्रमा: ।

शङ्खं पातालपालानां यश:पिण्डमिवोद्धृतम्।।"[२४]

श्लेषोपमा-

"पाशपाणिरसाविष्टविग्रहो वनगोचर: ।

वीरोऽपि करुण: केन क्षुद्र: पाशीव पीडित:।।"[२५]

---

२२. "साधर्म्यमुपमा भेदे।"
काव्य प्रकाश १०/१२४ ।

२३. जानकीहरणम् २/२८ इ०सं० ।

२४. वही २/११ ।

२५. वही २/२२ ।

रूपक अलङ्कार:-

उपमान और उपमेय का जो अभेद वर्णन है वह रूपक अलङ्कार है।[२६]

यथा-

"नरेन्द्र चन्द्रस्य यशोवितानज्योत्स्ना महीमण्डल मण्डनस्य।
तस्यारिनारी नयनेन्दुकान्तविष्यन्दहेतुतुर्भुवनं ततान।।"[२७]

उपर्युक्त श्लोक में नरेन्द्र में चन्द्र, यश में ज्योत्स्ना तथा नयनों के इन्दुकान्तमणि का चमत्कारपूर्ण अभेदारोप होने के कारण रूपक अलङ्कार है। स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त इस रूपक अलङ्कार के माध्यम से कवि ने नृपति दशरथ के अतुलनीय प्रभाव का वर्णन प्रस्तुत किया है।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार:-

प्रकृत अर्थात् उपमेय की सम अर्थात् उपमान् के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा अलङ्कार कहलाता है।[२८]

---

२६. "तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो।"
काव्यप्रकाश १०/१३८ ।
२७. "जानकीहरणम् १/२५ इ०सं० ।
२८. "सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन् रात् ।"
काव्यप्रकाश १०/१३६ ।

यथा-

"आसीदवन्यामतिभोगभाराद्दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या।

क्षत्रानलस्थानशमी समृद्ध्या पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या।"[२९]

उपर्युक्त श्लोक में महाकवि ने अयोध्या की समृद्धि की अति सुन्दर उत्प्रेक्षा की है।

गूढोत्प्रेक्षा-

"आज्ञापयितुमेतस्य राक्षस्य दिशो दश।

वक्त्राणिङ्क्रिसंख्यानि पुनः सृष्टानि शूलिना।।"[३०]

हेतूत्प्रेक्षाः-

"तथा हृतं तस्य तया पृथुत्वं यथाऽभवन्मध्यमतिक्षयिष्णु।

इतीव बद्धा रशनागुणेन श्रोणी पुनर्वृद्धिनिषेधहेतोः।"[३१]

---

२९. जानकीहरणम् १/१ इ०सं० ।
३०. जानकीहरणम् २/५१ ।
३१. वही १/३० ।

स्वरूपोत्प्रेक्षा:-

"अरालकेश्या अलके विधात्रा विधीयमाने चलतूलिकाग्रात।

च्युतस्य विन्दोरसितस्य मार्गरिखेव रेजे नवरोमराजी।"[३२]

क्रियोत्प्रेक्षा:-

"य: कृष्यमाणेषु मृगेषु नागैर्दरीमुखादर्धविनिर्गताङ्गै:।

प्रसारितास्य: स्वयमेव सत्वान् ग्रासीकरोतीव वित्य जिह्वाम्।"[33]

सन्देह अलङ्कार:-

उपमेय का उपमान रूप से यंशय, सदेह नामक अलङ्कार कहलाता है।[३४]

यथा-

"पद्म सितोऽयं पवनावधूतैर्निर्धातरागो न तरलेङ्गशै:।

सम्भावितो नु द्रुहिणेन तावत् कृतादिकर्मापि न यावकेन्।"[३५]

---

३२. वही १/३३ ।
३३. जानकीहरणम् ३/३१ इ०सं० ।
३४. "ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशय.।"
काव्य प्रकाश १०/१३७ ।
३५. जानकीहरणम् ३/३१ इ०सं० ।

उपर्युक्त श्लोक में श्वेत कमल का वर्णन संशय में ही समाप्त होने के कारण सन्देह अलङ्कार है।

भ्रान्तिमान अलङ्कार:-

जिसमें प्राकरणिक के दर्शन में, आप्राकरिणक के साथ उसके सादृश्य के कारण अप्राकरणिक प्रतीत का निरूपण किया जाय वह भ्रान्तिमान अलङ्कार कहलाता है।[३६]

यथा -

"सोपानरत्ननिर्भिन्नतमश्च्छेदेन दर्शिता:।

ग्लायन्ति यत्र न सरश्चक्रवाका निशास्वपि।"[३७]

उपर्युक्त श्लोक में मणियों की प्रभा के कारण रात्रि में भी दिन के सदृश्य अन्धकार-नाश को देखकर चक्रवाक की दिन हो जाने के भ्रम का चमत्कार पूर्ण वर्णन होने के कारण भ्रान्तिमान अलङ्कार कहलाता है।

---

३६. "भ्रान्तिमान्नयसंवित् तत्तुल्यदर्शने।"
काव्य प्रकाश ३/१३३ इ०सं० ।

३७. जानकीहरणम् ६/२८ इ०सं० ।

अपह्नुति अलङ्कारः-

जहाँ प्रकृत अर्थात उपमेय का निषेध करके जो अन्य अर्थात् उपमान की सिद्धि की जाती है वह अपह्नुति अलङ्कार कहलाता है।[३८]

यथा-

"अम्भोभि सह पद्मरागसरणिर्ग्रासीकृता वारिधे-

रूद्वान्ता पुनरिन्द्रगोपककुलव्याजेन मेघैरिह ।

तनैषमुदरेषु रत्नविततिर्रान्तावाशिष्टानव-

प्रोद्यद्भासुरवृत्रसूदनधनुर्व्याजेन संलक्ष्यते।।"[३९]

उपर्युक्त श्लोक में इन्द्रगोपक अर्थात् वीर वधूटी के समूह को पद्मरागमणियों की राशि बताते हुए उपमेय इन्द्रगोपक का निषेध करके उपमान पद्मराग मणि की सत्यता का प्रतिपादन किये जाने के कारण अपह्नुति अलङ्कार है।

---

३८. "प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः।"
काव्य प्रकाश १०/१४५ ।

३९. जानकीहरणम् ११/३४ इ०सं० ।

अनन्वय अलङ्कार:-

एक वाक्य में एक ही के उपमान तथा उपमेय दोनों होने पर अनन्वय अलङ्कार होता है।[४०]

यथा-

"तयो रयो बाणरयोपबृंहितस्फुटत्ध्वनिस्फेटित कर्णमाहवम्।
गरुत्यदाशी विषपातदु:सहं निरीक्षतं तं विततार तत्समम्।।"[४१]

प्रस्तुत श्लोक के राम-रावण में हुए भयंकर यद्ध को अनन्य सदृश बताते हुए कवि ने कहा है कि ऐसा युद्ध जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती तथा जिसकी समता उसी युद्ध से की जा सकती है।

निदर्शना अलङ्कार:-

जहाँ वस्तु का असम्भव या अनुपद्यमान सम्बन्ध उपमा का परिकल्पक होता है वह निदर्शना अलङ्कार होता है।"[४२]

---

४०. "उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे।"
काव्य प्रकाश १०/१३४ ।

४१. जानकीहरणम् ११/२६ ।

४२. "अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमा परिकल्पक:।।"

यथा-

"धातुप्रभालोहितपक्षयुग्मः श्रीमद्गुहालंकृतचारुपृष्ठः।

दिव्यस्य यश्चन्द्रकिरणो विभर्ति रुपश्रियं भासुरचन्द्रकान्तः।"[४३]

मयूर की शोभा पर्वत नही धारण कर सकता। अतः मयूर के समान शोभा धारण करना अर्थ है इस प्रकार पदार्थ के उपमा में पर्यवसित होने से निदर्शना अलङ्कार है।

समासोक्ति अलङ्कारः-

श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रकृत का कथन समासोक्ति अलङ्कार[४४]

यथा-

"प्रवासमालम्बय घनागमश्रियः पयोधरस्पर्श वियोगनिस्पृहः।

महीधरः स्वं शिखरावसङ्गिनं त्यजत्यसौ मत्तशिखण्डिशेखरम्।"[४५]

काव्य प्रकाश १०/१४८ ।
४३. जानकीहरणम १/७१ इ०सं० ।
४४. "परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।"
काव्य प्रकाश १०/१४७ ।
४५. जानकीहरणम् १२/१३ इ०सं० ।

यहाँ पयोधरादि श्लिष्ट विशेषणों द्वारा महीधर अर्थात् पर्वत से नायक तथा धनागम श्री से नायिका का अर्थ उपलब्ध होने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है।

अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कारः-

प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने वाली जो अप्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा है वह ही अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।[४६]

यथा-

"स्वाभिमानपरिबोधनहेतोर्भावशून्यमभिधाय वचांसि।

स्वामिनं युधि नियुज्य विमर्दं द्रष्टुमप्युपसरन्ति न केचित्।।"[४७]

इसी प्रकार भोगने के लिए धनी पुरुष के कौन सहायक नहीं होते? युद्धभूमि में जब उनका वध होने लगता है तो साथ देने वाले दुर्लभ होते हैं- इस प्रकार अप्रस्तुत अर्थ की वर्णना, जो कि प्रस्तुत अर्थ की प्रतिपत्ति का निमित्त है, अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

---

४६. "अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।"
काव्य प्रकाश १०/१५०।

४७. जानकीहरणम् १५/८ इ०स०।

अतिशयोक्ति अलङ्कार:-

उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण करके जो 'अध्यवसान' करना है वह प्रथम प्रकार की, प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप से वर्णन द्वितीय प्रकार की, यदि के समानार्थक शब्द लगाकर जो कल्पना करना है वह तृतीय प्रकार की और कार्य कारण की पौर्वापर्य का जो विपर्यय है वह चतुर्थ प्रकार की अतिशयोक्ति होती है।[४८]

यथा-

"कृता वलौधेन तथा यता यता रजस्तति: प्रावृतदिग्घना घना।

यथा खेरश्वपरम्परा परा ययौ निमज्जत्खुमालयालया।।"[४९]

उपर्युक्त श्लोक में रजकणराशि का वर्णन अत्यधिक बढ़ा चढ़ाकर किये जाने के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

---

४८. "निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्
प्रस्तुतस्य यदनन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ।।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्यय: ।
विज्ञेयाऽतिशयोक्ति सा।।"
काव्य प्रकाश १०/१५२ ।

४९. जानकीहरणम् १७/३१ इ०सं० ।

दृष्टान्त अलङ्कारः-

दृष्टान्त व अलङ्कार है जिसमें उपमेय वाक्य तथा उपमान वाक्य दोनों वाक्यों में इन सबका अर्थात् उपमान, उपमेय, साधारण धर्म बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकता है।[७०]

यह दृष्टान्त वैधर्म्य अर्थात् विरुद्ध धर्म सम्बन्ध के द्वारा भी सम्भव है।

यथा-

"इहाधित्यं तव पादसेवया मयाऽनुभूतं च न चेह विस्मयः।

वने वृकेणापि मृगेन्द्रसेविते न दुर्ल्लभं

हि द्विपराजशोणितम्।"[७१]

तुल्ययोगिता अलङ्कारः-

नियत अर्थात् या तो केवल प्रकृत या केवल अप्रकृत अर्थो का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने पर 'तुल्ययोगिता अलङ्कार होता है।[७२]

---

७०. "दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।"
काव्य प्रकाश १०/१५४ ।

७१. जानकीहरणम् १२/४५ कु०सं० ।

७२. "नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।"
काव्य प्रकाश १०/१५७ ।

यथा-

"इमौ हरि संहृतरोपशङ्कितौ नितान्ततप्तौ तपनस्य दीप्तिभिः।

तलं गजस्य स्रुतगण्डसंपदः फणातपत्रं फणिनश्च वाञ्छतः।"[५३]

यहाँ सिंह तथा मण्डूक दोनों प्रकृत हैं, दोनों की एक क्रिया तथा एक समान धर्म होने के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

व्यतिरेक अलङ्कार :-

उपमान से अन्य अर्थात् उपमेय का जो आधिक्य का वर्णन ही व्यतिरेक अलङ्कार है।[५४]

यथा-

"निर्जिग्यतुबलिमृणालनालं सच्छिद्रवृत्तं यदि दीर्घसूत्रम्।

सुश्लिष्टसन्धी शुभविग्रहौ तो तन्व्याभुजौ किं किल तत्र चित्रम्।।"[५५]

यहाँ कौशल्या की भुजाओं रूप उपमेय की मृणाल नाल रूप उपमान से श्रेष्ठता का कथन किये जाने के

---

५३. जानकीहरणम् ५/२४ इ०सं० ।
५४. "उपमानाद् मदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।"
काव्य प्रकाश १०/१५८ ।
५५. जानकीहरणम १/३५ इ०सं० ।

कारण व्यतिरेक अलङ्कार है।

विशेषोक्ति अलङ्कार:-

सम्पूर्ण कारणों के होने पर फल का न कहना विशेषोक्ति है।[७६]

यथा-

"विन्यस्तपीनस्तनहेमकुम्भा स्वेदाम्बुभिस्तद्धृदयोपकार्या।
मनोभुवस्तत्प्रथमप्रवेशे सिक्तापि न तत्र रज: शशाम्।।[७७]

उपर्युक्त श्लोक में कामोद्वेग रज के शमन हेतु सिञ्चन करने के लिए स्वेद रूप जल कारण के विद्यमान होनें पर भी रज के शमन रूप कार्य के सिद्ध होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है।

विरोधाभास अलङ्कार:-

वास्तव में विरोध न होने पर भी विरुद्ध रूप से जो वर्णन करना यह विरोध या विरोधाभास अलङ्कार होता है।[७८]

---

७६. "विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच:।"
काव्य प्रकाश १०/१६२ ।

७७. जानकीहरणम् ७/४ इ०सं० ।

७८. "विरोध: सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वच:।"

यथा-

"सम्प्राप्तजडिमा भानुस्तीव्रतापश्च चन्द्रमाः।

किमेतौ वहतौ देवौ धामव्यत्ययविप्लवम्।।"[५९]

उपर्युक्त श्लोक में सूर्य का जडिमा गुण के साथ तथा चन्द्रमा का तीव्र ताप गुण के साथ शोकाधिक्य के कारण विरोध प्रतीत होने के कारण विरोधाभास अलङ्कार है।

स्वभावोक्ति अलङ्कार :-

बालक आदि की अपनी स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप का वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार कहलाता है।[६०]

यथा-

"समुत्तिष्ठन्त्येते निगडकृतझङ्कारमपरं

शनैराकर्षन्तः करटतटलीनालिविततीः।

निरस्यन्तो हेलाविधुतपृथुकर्णान्तपवनै-

र्द्विपास्ते दन्ताग्रस्थितकरमुदस्याननतटम्।"[६१]

काव्य प्रकाश १०/१६५ ।

५९. जानकीहरणम् २/२५ इ०सं० ।

६०. "स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।"

काव्य प्रकाश १०/१६७ ।

६१. जानकीहरणम् ३/७९ इ०सं० ।

उपर्युक्त श्लोक में गज की स्वाभाविक क्रियाओं यथा- शनैःशनैः श्रृंखलाओं का कर्षण अपने गण्डस्थल पर स्थित मक्षिका समूह को कर्णों की वायु से उड़ाना, ऊपर सूड़ करते हुए उठना आदि का सजीव चित्रण होने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

पर्यायोक्त अलङ्कारः-

वाच्य वाचकभाव के बिना जो वाच्यार्थ का कथन करना वह पर्यायोक्त अलङ्कार कहलाता है।[६२]

यथा-

प्रतिज्ञा को विस्मृत कर देने वाले सुग्रीव पर बाण सदृश वचनों से प्रहार करते हुए राम का लक्ष्मण से कथन है-

"पदं नवैश्वर्यबलेन लम्भितं विसृज्य पूर्वं समयो विमृश्यताम्।

जगज्जिघत्सातुरकण्ठपद्धतिर्नवालिनैवाहिततृप्तिरन्तकः।"[६३]

---

६२ "पर्यायोक्तं बिना वाच्यवाचकत्वेन शब्दवः।"
काव्य प्रकाश १०/१७४ ।

६३. जानकीहरणम १२/३६ इ०सं० ।

नूतन ऐश्वर्य के बल से प्राप्त पद को त्याग कर पूर्वकृत प्रतिज्ञा का स्मरण कीजिए। (समझ लीजिए कि) संसार को विनष्ट करने की आतुरता जिसका क्रम है, ऐसे यमराज की, केवल बालि को मार कर तृप्ति नही होगी। अर्थात् वह आपको भी मारेगा।

काव्यलिङ्ग अलङ्कार:-

हेतु का वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप मे कथन करना काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है।[६४]

यथा-

"नागाङ्गनारत्नमरीचिजालध्वस्तान्धकारप्रकरस्य यस्य।

निकुञ्जपद्माकरपद्मखण्डैर्विदन्ति रात्रिन्दिवसंविभागम्।"[६५]

उपर्युक्त श्लोक में रात्रि तथा दिवस के विभाजन में कमल पुष्पों का प्रस्फुटित होना वर्णित होने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

---

६४. "काव्यलिङ्ग हेतोर्वाक्यपदार्थता।"
काव्य प्रकाश १०/१७३ ।

६५. जानकीहरणम् १/७० इ०सं० ।

अर्थालङ्कार का प्रयोग एवं समीक्षा:-

महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य में शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग किया है, किन्तु शब्दालङ्कारों का जितना अधिक व्यापक विधान तथा शब्द चित्रों के जितने जटिल विविध प्रकार सपरिश्रम प्रस्तुत किये गये हैं, उतने अर्थालङ्कारों के विविध प्रकारों का प्रस्तुतीकरण नही हुआ है। उन्होंने अनुप्रास का अनुराग तथा उत्प्रेक्षाओं की उपेक्षा छिपायी नही है। उनका उत्प्रेक्षा का प्रयोग सहज है। प्रयासजन्य नही है। उनसे रस आदि की दीप्ति अच्छी प्रकार हुई है। उपमा का प्रयोग तो कालिदास की तरह ही स्तुत्य है। जिसमें श्लेषालङ्कार तथा श्लेषानुप्राणित उपमा का तो प्रयोग बहुलता से मिलता है जो कि कहीं भी दुरूह नही है बल्कि रसोचित है।

❑❑

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

रस निरूपण

सामान्य परिचय:-

रस सहृदय का हृदय स्थित वासना की आनन्दमय परिणति है। भारतीय साहित्य समीक्षकों ने काव्य से प्राप्त होने वाले विगलित-वेद्यान्तर-शून्य सकल प्रयोजन मौलिभूत ब्रह्मानन्द सहोदर अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द की अनूभूति का विवेचन रसचर्वणा के रूप में क्रिया है। काव्य तथा नाट्य में रस की अभिव्यक्ति उनकी सर्वश्रेष्ठता के लिए अत्यन्त अपेक्षित है। अलङ्कार' की स्थिति तो केवल कटक-कुण्डल आदि के समान गौण है। कटक-कुण्डल आदि मनुष्य के उत्कर्षाधायक धर्म तो हो सकते हैं, जीवनधायक नहीं। कटक-कुण्डल आदि अलङ्कारों को धारण करने वाला व्यक्ति बड़ा आदमी माना जा सकता है, पर उनके हटा देने पर या उनसे रहत व्यक्ति मनुष्य न रहे यह नहीं हो सकता हैं। शरीर का जीवनधायक तत्त्व आत्मा है, इसी प्रकार काव्य का जीवनधायक तत्त्व रस है। रसमय

काव्य की सृष्टि एवम् तदौचित्य की साधना श्रेष्ठ कवि का चरम लक्ष्य है।

रस की महत्ता के विषय में आचार्य भरतमुनि का कथन है'

"न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।"[१]

अर्थात् कोई अर्थ रस के बिना प्रवृत्त नहीं होता है। आचार्य विश्वनाथ रसात्मक वाक्यों में ही काव्यत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[२]

आचार्य महिम भट्ट ध्वनि का विरोध किन्तु रस का समर्थन करते हुए लिखते हैं-

"काव्यरम्भस्य साफल्यमिच्छता तत् प्रवृत्ति निबन्धनभाव-नेनास्य रसालकत्वमवश्यमभ्युपगन्तव्यम् ++++।"[3]

---

१. नाट्यशास्त्र अध्याय ६, पृष्ठ २७४, गा०ओ०सी० बड़ौदा, १९२६ ।
२. साहित्य दर्पण, पृ० १९, शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली सन् १९६१ ।
३. व्यक्ति विवेक, प्रथम विमर्श पृ० ९७ काशी संस्कृत सीरीज, १२१ (१९३६) ।

पं० राजजगन्नाथ का उत्तम काव्य के विषय में मत है-

"तत्र ध्वनेरुत्तमोत्तमस्य ++++।" एवम्

पञ्चात्मके ध्वनौ परमरमणीयतया रसध्वनेः।

तदात्मा रसः तावत् अभिधीयते।"[४]

रस सिद्धान्त के प्रथम प्रवर्तक आचार्य भरत मुनि रस-निष्पत्ति प्रक्रिया का विवेचन करते हुए कहते हैं-

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः।"[५]

अर्थात् विभाव, अनुभाव, तथा व्याभिचारिभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

रसानुभूति के कारणों को 'विभाव' कहते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं- एक 'आलम्बन विभाव' और दूसरा 'उद्दीपन विभाव'। जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है उसको आलम्बन विभाव कहते हैं। जैसे-सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है और उन दोनों के देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए

---

४. रस गङ्गाधर, पृ० ७८-७९, बदीनाथ झा, बनारस १९५५ ।

५. नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, पृ० २७४/१९२६ ।

सीता, राम आदि शृङ्गार रस के 'आलम्बन विभाव' कहलाते हैं। चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा इस रति का उद्दीपन विभाव कहा जाता है।

अपने-अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से सीता-राम आदि के भीतर उद्‌बुद्ध रति आदि रूप स्थायिभाव को वाह्यरूप मं जो प्रकाशित करता है। वह रत्यादि का कार्यरूप, काव्य और नाट्य में अनुभाव के नाम से जाना जाता है।[६]

उद्‌बुद्ध हुए स्थायिभावों की पुष्टि तथ उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं उनको व्यभिचारीभाव कहते हैं। इनकी संख्या ३३ है।

इन विभाव, अनुभाव, तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त एवं पुष्ट रत्यादि स्थायी भाव उद्‌बुद्ध होते हैं तथा रस की निष्पत्ति होती है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रस के विषय में लिखा है-

---

६. "उद्‌बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।"
आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण ३/१३२ ।

"चित्तवृत्ति विशेषश्च रसः।"[७]

रसों की संख्याः-

आचार्य भरतमुनि के अनुसार मूल रस चार ही हैं- शृङ्गार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। उनका कथन है- "शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुद तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति रस की उत्पत्ति हुई।[८]

कालान्तर में उद्‌भट,[९] अभिनव गुप्त,[१०] हेमचन्द्र,[११] मम्मट,[१२] रामचन्द्र गुणचन्द्र,[१३] विद्यानाथ,[१४] पंडित राज जगन्नाथ,[१५] विश्वनाथ,[१६] आदि आचार्यों ने नवम् रस 'शान्त' की स्थापना की। यद्यपि नवीन रसों की कल्पना एवं उद्‌भावना अन्य विद्वानों ने अपने अपने मतानुसार की है, तथापि उन रसों के विषय में कोई प्रामाणिक धारणा प्रतिष्ठापित नहीं की गयी है। महाराज भोज एवं विश्वनाथक विराज आदि आचार्यों ने दशम् रस 'वात्सल्य'

---

७. नाट्य दर्पण, पृ० १६१, डा० टी० भट्टाचार्य, गा०ओ०सी० ।
८. नाट्यशास्त्र ६/३८-३९ ।
९. काव्यालङ्कार सार संग्रह, ४/४ (४५) पृ० ५२ भा०ओ०ई०पूना १९२५ ।
१०. नाट्यशास्त्र अध्याय ६ पृ० २६८-२६९, गा०ओ०सी०।
११. काव्यानुशासन अध्याय २, सूत्र २, पृ० १०६
१२. काव्य प्रकाश ४/१३५
१३. नाट्यदर्पण ३/१११, गा०ओ०सी० ।
१४. प्रताप रुद्र यशोभूषण, रस प्रकरण, पृ०२२१, राजकीय ग्रन्थमाला ।
१५. रस गङ्गाधर रस प्रकरण पृ० १२१ ।
१६. साहित्य दर्पण ३/१८२ ।

भी स्वीकार किया है, परन्तु मम्मट आदि विद्वानों के अनुसार 'वात्सल्य' रस का स्थायीभाव 'स्नेह' रति का ही विशेष रूप होने के कारण यह शृङ्गार रस के ही अन्तर्गत है। अन्तर केवल यह है कि छोटों के प्रति प्रेम भावना स्नेह कहलाती है। भरतमुनि ने प्रत्येक रस के पृथक-पृकि देवता तथा उन रसों के पृथक-पृथक वर्ग निर्धारित किये हैं। ये देवता पौराणिक परम्परा के अनुसार स्वीकार किये गये हैं। आचार्य भरत,[१७] हेमचन्द्र,[१८] मम्मट[१९] तथा विश्वनाथ[२०] कविराज ने रसों की गणना करते हुए सर्व प्रथम शृङ्गार रस का उल्लेख किया है। रसों का यह क्रम-निर्देश रस गत श्रेष्ठता पर आधारित है। वस्तुतः शृङ्गार रस का का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। विद्वज्जन रस को उत्तमता से पृथक स्वीकार नहीं करते। भरतमुनि का मत है-

"यत्किंचिलोके शुचिमेध्यं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेण अनुमीयते।"[२१]

अभिप्राय यह है कि लोक में यत्किंचित् पवित्र, उत्तम, उज्जवल अथवा दर्शनीय है अर्थात् जिसमें सरस एवं

---

१७. नाट्यशास्त्र ६/१६ ।
१८. काव्यानुशासन २/२ ।
१९. काव्य प्रकाश ४/२९ ।
२०. साहित्य दर्पण ३/१८२ ।
२१ नाट्यशास्त्र, पृ० सं० ६३, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९८५

हृदयग्राही विचारयुक्त वर्णन आदि है- यह सब शृङ्गार रस के द्वारा ही सम्भाव्य है।

महाकवि कुमारदास की दृष्टि में रस का महत्वः-

काव्य का प्राण रस है और रस का अन्तःसार चमत्कार। रसहीन काव्य अकाव्य है। अतएव कहा गया है कि- 'रसे सारः चमत्कारः। अर्थात् रस का जीवन चमत्कार किंवा चर्वणानुभूति है। कुमारदास का काव्य, रससिक्त और कवि स्वयं रसनिबन्धन में सिद्धहस्त हैं। "जानकीहरणम्" महाकाव्य में प्रायः समस्त रसों का निबन्धन किया गया है। किन्तु शृङ्गार रस इसमें अङ्गीरूप में निबन्धित है।

प्रस्तुत महाकाव्य का अङ्गी रस-शृङ्गारः-

महाकवि कुमारदास कृत "जानकीहरणम्" शृङ्गार रस प्रधान महाकाव्य है, किन्तु साथ ही इसमें अन्य रसों की गौण रूप में यथास्थान मनोरम अभिव्यञ्जना हुई है। काव्यशास्त्र विषयक शास्त्रीय नियमानुसार भी महाकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अङ्गी तथा अन्य रसों के अङ्ग रूप में व्यञ्जित होने का विधान है। यथा-

"शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः ---- ।"[२२]

साहित्य मानव मन की भावों की अभिराम अभिव्यक्ति है। मनुष्य के लौकिक जीवन में यह तथ्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सदैव एक ही रस नहीं बना रहता है। प्रत्येक घटना किसी न किसी देश काल में ही घटित होती है। इन घटनाओं के संग्रथन का नाम ही जीवन है। शैशवावस्था से लेकर मरणावस्था तक जीवन के विभिन्न सोपानों को क्रमशः पार करता हुआ मनुष्य अपनी अवस्था तथा परिस्थितियों के अनुसार विविध रसों का अनुभव करता है।

'जानकीहरणम्' महाकाव्य में कवि अङ्गी रस शृङ्गार के साथ अन्य अङ्ग रसों यथा- हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा वात्सल्य रस की साधना में भी सफल हुआ है। शृङ्गार रस का स्थायीभाव 'रति' है। पुरुष-स्त्री, नर-नारी अथवा नायक-नायिका के हृदय में 'रति' अर्थात् प्रेम भाव सदैव प्रसुप्तावस्था में बीज रूप में विद्यमान रहता है। यही रति रूप स्थायीभाव कारण- विशेष

२२. साहित्य दर्पण ६/३१६, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९६१ ।

के उपस्थित होने पर तथा विशिष्ट परिस्थितियों के विद्यमान होने पर विभाव-अनुभाव तथा सञ्चारीभावों के संयोग से क्रमशः जाग्रत, उद्‌दीप्त तथा परिपुष्ट होकर शृङ्गार रस के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुतः कामभावना से सकल जाति के सुलभ तथा अत्यन्त परिचित होने के कारण ही यह सबके प्रति मनोहारी है।[२३] इसलिए सर्वप्रथम 'शृङ्गार' की गणना की जाती है।

शृङ्गार रस के दो भेद होते हैं विप्रलम्भ तथा संभोग। विप्रलम्भ की परिभाषा करते हुए आचार्य विश्वनाथ का कथन है-

"जहाँ अनुराग तो अति उत्कृष्ट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रलम्भ (वियोग) कहते हैं। वह विप्रलम्भ पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण- इन भेदों से चार प्रकार का होता है।"[२४]

सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका का समागम से पूर्व की

---

२३. आचार्य हेमचन्द्र काव्यानुशासनम्, २/२ की वृत्ति।

२४. "यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।
स च पूर्वरागमानप्रवास करुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्।।"
साहित्य दर्पण ३/१८७ ।

अवस्था का नाम 'पूर्वराग' है।[२५] यह पूर्वराग ३ प्रकार का होता है- नीली, राग, कुसुम्भ राग, तथा मंजिष्ठा राग। नीली राग वह है जो वाह्य चमक दमक अधिक न दिखाये, परन्तु हृदय से कदापि दूर न हो। कुसुम्भ राग शोभित तो अधिक होता है, परन्तु समाप्त हो जाता है। मंजिष्ठा राग उस प्रेम को कहते हैं जो समाप्त भी न हो तथा शोभित भी बहुलता से हो।[२६]

वस्तुतः वियोग की अनुभूति के बिना संयोग शृङ्गार परिपुष्ट नहीं होता। कषायित वस्त्रादि रङ्ग में भलीभाँति रञ्जित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी वस्त्रादि को रङ्ग रञ्जित करने के पूर्व उसी रङ्गनुकूल किसी वस्तु में अथवा अनार के छिलकों के क्वाथ में रंगकर तत्पश्चात् उस रङ्ग में रंगने से उस वस्त्रादि के रङ्ग में चमक, स्वच्छता, एवम् परिपक्वता का सन्निवेश हो जाता है। उसी प्रकार पूर्व रागादि के अनन्तर सम्पन्न संभोग अपेक्षाकृत अधिक चमत्कृत होता है। यथा-

---

२५. "श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो यो प्राप्तो पूर्वरागः स उच्यते।"
साहित्य दर्पण ३/१८८ ।

२६. साहित्य दर्पण ३/१९५-९७ ।

"न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वस्त्रादौ, भूयान्रागो विवर्धते।"[२७]

बिना प्रेम के विरह की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, इसी तरह बिना विरह के प्रेम का भी अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है वहाँ विरह है। प्रेम के अंकुर को विरह जल ही पल्लवित करता है। प्रेम दीपक की बाती को यह विरह ही उकसाता रहा है।[२८]

संभोग शृङ्गार वह कहलाता है जिसमें परस्पर प्रेम में अनुरक्त नायक-नायिका दर्शन, स्पर्श आदि करते हैं। चुम्बन आलिङ्गन आदि इसके अनन्त भेदों के अगणित होनें के कारण इसका 'संभोगशृङ्गार'- यही एक माना गया है। षड्ऋतु वर्णन, सूर्य तथा चन्द्रमा का वर्णन, उदय, अस्त का वर्णन, जल विहार, वन विहार, प्रभात, मद्यपान, रात्रिक्रीड़ा, चन्दनादि लेपन, भूषणधारण, तथा अन्य मत्किंचित् स्वच्छ उज्जवल, ग्राह्य लेपन, भूषणधारण, तथा अन्य मत्किंचित्

---

२७. साहित्य दर्पण, पृ० ११४, व्याख्याकार - श्री पं० शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

२८. शृङ्गार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृ० ४३, डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा-३, १९६९ ।

स्वच्छ उज्जवल, ग्राह्य वस्तुएं हैं, उन सबका वर्णन शृङ्गार रस में होता है।[२३]

'जानकीहरण' महाकाव्य शृङ्गार रस के - विप्रलम्भ तथा सम्भोग - इन दोनों ही पक्षों के साङ्गोपाङ्ग चित्रण का सफल निदर्शन है। इसमें शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। पहले नायक-नायिका गत विप्रलम्भ शृङ्गार के पूर्वराग का वर्णन, तत्पश्चात् उनके सम्भोग शृङ्गार की मनोहारी अभिव्यञ्जना महाकवि कुमारदास को 'रससिद्ध कवीश्वर' के रूप मे प्रतिष्ठित करती है।

'जानकीहरणम्' महाकाव्य के नायक जगत्पति विष्णु के अवतार लोक-रञ्जक राम तथा नायिका सीता हैं। समाज के समक्ष मर्यादित प्रेम का उज्जवल आदर्श उपस्थित करने वाले नायक राम का चरित्र वाल्मीकीय रामायण आदि ग्रन्थों में गाम्भीर्य, क्षमा, विनय, स्वाभिमान, दृढ़व्रत, की भावना तथा शालीनता एवम् कर्त्तव्यपरायणतादि गुणों से युक्त चित्रित हुआ है। साहित्य शास्त्रीय भाषा में राम धीरोदात्त नायक है तथा सीता स्वकीया प्रकार की मुग्धा नायिका।

---

२३. साहित्य दर्पण, पृ० ११४, व्याख्याकार - श्री पं० शालग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

सीता के प्रति राम का प्रेम वासनामात्र नहीं है, प्रत्युत् धर्म द्वारा अनुप्राणित एवं मर्यादित दाम्पत्य प्रेम है।

दाम्पत्य प्रेम में आत्मसमर्पण आदि मृदु भावों के संयोग के कारण वासनात्मक काम का अंश अति न्युन रह जाता है। वस्तुतः काम तथा प्रेम का कामुकता एवम् विलासिता के साथ नाममात्र का सम्बन्ध है। महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' में कामीयक्ष को सच्चे प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया है। शृङ्गार रस के अन्तर्गत प्रेम का पूर्ण परिपाक एवम् प्रकर्ष होता है। शृङ्गार रस परक काव्य की स्थिति में जीवन सरस दृष्टिगोचर होता है। नर-नारी के आकर्षण प्रत्याकर्षण में अद्वैत-स्थापना की इच्छा क स्वल्प प्रतिबिम्बित होता है। महाकवि भवभूति ने दाम्पतय अद्वैत का सुन्दर वर्णन किया है। स्त्री पुरुष के काम वासनामय हृदय की परस्पर रमणेच्छा का नाम 'रति' है।

यही 'रति' शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। पारस्परिक भाव होने के कारण यह नायक तथा नायिका दोनों में स्थित होता है। शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव का आश्रय लेकर तथा उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त होकर 'रति' स्थायीभाव उत्कर्ष को प्राप्त होता है। परस्त्री तथा अनुराग

शून्य वेश्या के अतिरिक्त अन्य नायिकायें तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन, विभाव एवं चन्द्रमा, चन्दन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव होते हैं।[३०] विक्षेप कटाक्षादि इसके अनुभाव तथा उग्रता, मरण, आलस्य एवम् जुगुप्सा को छोड़कर शेष निर्वेदादि सञ्चारीभाव शृङ्गार रस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं।[३१]

महाकवि कुमारदास की कृति 'जानकीहरणम्' में शृङ्गार रस की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है। महाकवि को जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ, उन्होंने उसका सम्यक रूपेण उपभोग किया है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग में सम्राट दशरथ की महिषी कौशल्य के अद्वितीय शारीरिक सौन्दर्य एवम् अङ्ग लावण्य वर्णन से आरम्भ में ही यह आभासित होने लगता है कि कवि शृङ्गार रस का सिद्ध साधक है, तदन्तर तृतीय सर्ग में रानियों के साथ राजा दशरथ के उद्यान विहार एवम् जल केलि वर्णन के पश्चात् सप्तम्-अष्टम सर्ग में नायक राम एवं नायिका सीता के पूर्वराग से परिपुष्ट सम्भोग शृङ्गार एवं दाम्पत्य-प्रेम के चित्रण में शृङ्गार रस अपनी पराकाष्ठा को

---

३० साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०६, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

३१. साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०६, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

प्राप्त हो गया है। षोड्स सर्ग में राक्षस राक्षसियों की शृङ्गारिक चेष्टाओं तथा मनोभावों का सुन्दर वर्णन हुआ है।

महाकवि कुमारदास महारानी कौशल्या के नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन का श्री गणेश नखों की सुन्दरता से करते हुए कहते हैं-

"महेन्द्रकल्पस्य महायदेव्याः स्फुरन्मयूखा सरणिर्नखानाम्।

पादद्वयान्ते जितपद्मकोशे मुक्तेव मुक्तावितितिर्विरेजे।।"[३२]

इन्द्र के समान दशरथ की रानी (कौशल्या) के कमल को लजाने वाले दोनों पैरों के अन्त में नखों की पंक्ति से जो प्रभा निकल रही थी वह ऐसी लगती थी जैसे उनके पूजन के हेतु किसी ने बहुत से मोती बिखेर दिये हों।

साम्राज्ञी की सुन्दर जंघाओं का वर्णन करते हुए महाकवि ने नारी के सौन्दर्य निर्माण की एक प्रसिद्ध विकट समस्या को निम्नलिखित श्लोक में उपस्थित किया है- ऐसा डा० कीथ का मत है-

---

३२. जानकीहरणम् १/२७ इ०सं० ।

"दृष्टौ हतं मन्मथबाणपातैः शक्यं विधातुं न निमील्य चक्षुः।

उरू विधात्रा न कृतौ कथं तावित्यास तस्यां सुमेतेर्वितर्कः।"[33]

बुद्धिमान लोग इस सन्देह में थे कि आखिर ब्रह्मा ने इनकी (कौशल्या की) जाँघों को बनाया तो कैसे बनाया। क्योंकि यदि वे आँखे खोलकर बनाते तो उनकी आँखे कामदेव के बाण से विद्ध हो जाती और, फिर आँख मूँदकर वे बिना ही कैसे सकते थे।

सन्देह के कारण उत्पन्न विचार का नाम वितर्क है।[34] इसके पश्चात् गुण वृद्धि तथा निषेध शब्दों के चमत्कार पूर्ण प्रयोग के माध्यम से कटि सौन्दर्य का- चित्रण दर्शनीय है-

"तथा द्रुतं तस्य तया पृथुत्वं यथाऽभवन्मध्यमतिक्षयिष्णु।

इतीव बद्धा रशनागुणेन श्रोणी पुनर्वृद्धिनिषेधहेतोः।"[35]

कटि के पश्चात् उदर, भुजाओं, अधरों, एवं मुख लावण्य का वर्णन कवि ने विविध उपमानों को ग्रहण करते

---

३३. वही १/२९ इ०सं० ।

३४. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, विमला हिन्दी व्याख्या सहित पृ० १०४, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

३५. जानकीहरणम् १/३० इ०सं० ।

हुए प्रस्तुत किया है। कवि के मतानुसार स्थल पर कौशल्या का मुख ही सर्वश्रेष्ठ है-

"कान्तिश्रिया निर्जितपद्मरागं मनोज्ञगन्धं द्वयमेव शस्तम्।
नवप्रबुद्धं जलजं जलेषु स्थलेषु तस्या वदनारविन्दम्।।"[३६]

श्रृङ्गार के विविध अङ्गों यथा- काम केलि, अङ्गनाओं के साथ विहार, जलक्रीड़ा आदि वर्णनों से युक्त तृतीय सर्ग में कामोद्दीपन में सर्वाधिक समर्थ एवं सफल ऋतुराज बसन्त के वर्णन के कारण श्रृङ्गार की अतिशय प्रभावशाली एवं मनोहारी अभिव्यञ्जना हुई है। वसन्त ऋतु का आगमन होने पर यद्यः स्फुटित नूतन पाटल-कालिकाओं को देखकर कवि की कमनीय कल्पना है-

"प्रादुर्बभूवुर्नवकुड्यलानि स्फुरन्ति कान्त्या करवीरजानि।
प्रवासिना शोणितपाटलानि तीरीफलानीव मनोभवस्य।।[३७]

प्रवासी जनों के मन में स्थित मनोभव अर्थात् कामदेव के तीक्ष्ण फलों से युक्त वाणों के समान प्रतीत होनें वाले पाटल की रक्तवर्णा नव कलिकायें प्रस्फुटित होनें

---

३६. वही १/३८ ।
३७. जानकीहरणम् ३/६ इ०सं० ।

लगी। बसन्त ऋतु के मादक प्रभाव के कारण वन्ध्य होते हुए भी अशोक वृक्ष अंगनाओं के आलक्त प्रस्फुटित रञ्जित एवं नूपुरों से झंकृत चरणों के प्रहार से प्रस्फुटित नूतन पुष्पांकरों से युक्त होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था। मानों अङ्गस्पर्श के कारण हर्षातिरेक से रोमाञ्चित हो उठा है।[३८] काम के उद्दीप्त करने वाले इस प्रकार के वातावरण के व्याप्त होने पर पृथ्वीपति दशरथ ने उस उद्यान में प्रवेश किया जिसमें भ्रमणशील भ्रमरों के समूह गुञ्जार कर रहे थे, जहाँ प्रस्फुटित रक्तवर्ण पुष्पों से युक्त पंक्ति बद्ध करवीर वृक्ष से सुशोभित थे तथा जो उद्यान कामदेव की समरभूति के समान प्रतीत हो रहा था।[३९] राजा दशरथ उन लताकुञ्जों में सुन्दरी युवतियों के साथ एकान्त में विहार करने लगे। विहार करते हुए राजा दशरथ द्वारा अपनी पत्नी के चरणों को लाक्षारस रञ्जित किये जाने की शृङ्गारिक क्रिया तथा सपत्नी के ऊपर उसी प्रतिक्रिया का सुन्दर वर्णन करते हुए कवि का कथन है-

---

३८. वही ३/७ ।

३९ जानकीहरणम् ३/१४ इ०रां०।

"पत्या परस्या नु विधीयमाने विलासवत्याश्चरणान्तरागे।

अन्यत्र युक्तोऽपि बबन्ध रागं लाक्षारसस्तत्प्रतिपक्षनेत्रे।।"[४०]

इसके पश्चात् नृपति द्वारा कमनीय अङ्गों वाली कामिनी का आलिङ्गन किये जाने का वर्णन कवि ने किया है। एक सुन्दर कामिनी जब कठिन पलाश के वृक्ष से गुलदस्ता बनाने के लिए फूल तोड़ रही थी तो उसकी रुचिर हथेलियों की ललाई पलाश में आ गई, उस समय उसके पति ने मृदु मुस्कान के साथ उसका आलिङ्गन किया।[४१]

उपवन विहार के पश्चात् वराङ्गनाओं से आवृत राजा दशरथ जलक्रीड़ा की ओर अभिमुख होते हैं। जल केलि वर्णन में कवि ने अधिक कामुक एवम् सविलास, शृङ्गारयुक्त चेष्टाओं का विनियोग किया है। जैसा कि निम्नांङ्कित उदाहरणों से स्पष्ट है-

"पद्माकरो वारि विगाहमानं कामीव रामाजनमूरुदघ्नाम्।

वीचीकराग्रेण नितम्बभागे व्यास्फालयामास शनैः सशब्दम्।।"[४२]

---

४०. वही ३/१८ ।
४१. जानकीहरणम् ३/२० इ०रां०।
४२. वही ३/३४ ।

जल विहार के समय सरोवर में मीन से भयभीत हुई- स्त्री में 'रति' स्थायीभाव की पुष्टि हेतु आविर्भूत संत्रास रूप सञ्चारीभाव शृङ्गार रस को अभिव्यक्त कर रहा है। यथा-

"मत्स्येन चीनांशुकपृष्ठलक्ष्यकाञ्चीमणिग्रासकुतूहलेन।
आघ्राय मुक्तोपनितम्बमेका संत्रासभुग्नभ्रु चिरं चकम्पे।।"[४३]

रति क्रीड़ा में किये गये नखक्षातों का उल्लेख कवि ने किया है-

"अन्या पुराणं निजमेव वीचिविक्षालिताङ्गेऽधिपतेः पृथिव्याः।
पदं नखस्य स्फुटकुङ्कुमाङ्कं दृष्ट्वा परं संशयमाललम्बे।।[४४]

जल केलि के पश्चात् प्रासाद ने निवास करते हुए नृपति दशरथ अपनी प्रमदाओं के सम्मुख सूर्यास्त का वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में जो कि 'रति' रूप स्थायीभाव को अधिक उद्दीप्त करने वाला है, करते हुए कहते हैं-

---

४३. वही ३/४६ इ०सं० ।
४४. जानकीहरणम् ३/५१ इ०सं० ।

"सकुङ्कुमस्त्रीकुचमण्डलद्युतिः प्रवासिनां चेतसि चिन्तयातुरे।

निधाय तापंतपनः पतत्यसौ विलोलवीचावपरान्तसागरे।।"[४५]

यह सूर्य, जो स्त्रियों के, केसर से रञ्जित गोलस्तन के सदृश शोभायमान है, परदेसियों के चित्त में तपन छोड़कर, तरङ्गों से आन्दोलित पश्चिमी समुद्रान्त में डूब रहा है।

अङ्ग रस

हास्य रसः-

हास्य रस का स्थायीभाव 'हास' है। संस्कृत काव्यों में प्रायः हास्य का अभाव ही है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य भी इससे मुक्त नहीं है। किन्तु राजा दशरथ द्वारा अपनी वृद्धावस्था के एक हास्य-चित्रण में हलका-सा हास्य देखा जा सकता है-

"जीवते जीर्णवयसः प्रत्याशा में मुमूर्षतः।

तिर्यग्विकम्पितैर्मूर्ध्नो नास्तीति प्रथयन्निव।।"[४६]

---

४५. वही ३/६४ ।

४६. जानकीहरणम् १०/१४ इ०सं० ।

वृद्धावस्था में केश-पाण्डुर कम्पमान शिर मानो हिल-हिल कर कहता है कि अब जीने की आशा नहीं।

करुण रस:-

करुण रस का स्थायीभाव 'शोक' है। संस्कृत साहित्य में "करुण्यं भवभूतिरेव तनुते" के द्वारा भवभूति को करुणरसावतार ही माना जाता है। क्योंकि उनके काव्य में "अपि ग्रावा रोदित" के द्वारा प्रस्तर भी रुदन करते दिखलायी देते हैं, पर कुमारदास ने भी अपने महाकाव्य में करुण रस की जो अभिव्यञ्जना की है उसमें हृदय को पिघला देने की पूर्ण क्षमता है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में श्रवणकुमार का विलाप तथा लङ्कादहन में राक्षसियों के करुण क्रन्दन में करुणा की पूर्ण अनुभूति होती है। दशरथ के बाण-प्रहार से विह्वल श्रवण के अतिक्रन्दन का मार्मिक उदाहरण द्रष्टव्य है। यथा-

"व्रती विनाथो विगतापराधः स्मर्तव्यदृष्टेः पितुरन्धयष्टिः।
इत्येषु किं निष्करुणेन कश्चिदवध्यभावे गणितो न हेतुः।।"[४७]

---

४७ जानकीहरणम् १/७९ इ०सं०।

श्रवण के मार्मिक दृश्य का अवलोकन करके स्वयं महाराज दशरथ रोने लगते हैं और चित्रलिखित से ठगे रहते हैं-

"वाष्पायमाणो बहुमानपात्रं यमप्रभावो यमिनां ददर्श।"[४८]

रौद्र रसः-

इस रस का स्थायीभाव 'क्रोध' है। कुमारदास अपने महाकाव्य में युद्ध स्थलों में वीरों के परस्पर आक्षेप पूर्ण वचनों में रौद्र का सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रकार सीता के अन्वेषण को भुला देने वाले सुग्रीव को फटकारते हुए लक्ष्मण के उपालम्भ में रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। सीताहरण में राम की पुकारती सीता को भयाक्रान्त करने हेतु रावण की निम्न उक्ति इसका प्रमाण है। यथा-

"सारङ्गाक्षि शरस्तस्य केवलं तु खरे खरः।

दूषणे दूषणो भद्रे न त्रिलोक्या विभौ रणे।।"[४९]

---

४८. वही १/८५ इ०सं०।

४९. जानकीहरणम् १०/८१ इ०रा० ।

वीर रस:-

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' है। 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में अनेकत्र युद्धो का उग्र वर्णन है। जिनमें वीर रस की अभिव्यञ्जना को विकास देने हेतु कवि को बहुशः अवसर मिला है। मृगया विहार, मारीच एवं सुबाहु के साथ युद्ध, अशोकावाटिका-विध्वंस तथा राक्षसों के साथ हनुमद्युद्ध, बालि सुग्रीव युद्ध इत्यादि अनेक स्थल हैं जहाँ वीर रस की सुन्दर अभिव्यञ्जना है। राम रावण युद्ध में रावण की वीरता का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

"मखैरसक्तं दशभिर्दशाननो नदन् तटित्सन्निभहेमभूषणः।

युगान्तमेघप्रतिमो महेषुभिः ततान धाराभिरिवान्तरं दिवः।"[५०]

भयानक रस:-

'जानकीहरणम्' महाकाव्य में भयानक रस का बहुशः पूर्ण चमत्कृति के साथ पल्लवन हुआ है। जिनमें परशुराम का क्रोधोग्र रूप, भयङ्कर रूपधारिणी ताड़का,

---

५०. जानकीहरणम् १९/९ इ०सं० ।

कुम्भकर्ण की विशालकाय की भीषणता आदि के वर्णनों में तो भय को भी भीति लग सकती है। जनकीपुरी में क्रुद्ध परशुराम का स्वरूप दर्शनीय है-

"भुजेऽतिभीमे सशरं शरासनं निधाय वामे निधनावहं द्विषाम।

करेऽपरस्मिन् परदुर्गपरागं परं स विभ्रत्परशुं परसुहा।।"[५१]

बीभत्सरस:-

बीभत्स रस का स्थायीभाव 'जुगुप्सा है। बीभत्स रस का अवसर इस काव्य में बहुत ही न्यून है। युद्धोपरान्त रणस्थलों में मृत-शरीरों पर बैठे कौओं, गृद्धो आदि के द्वारा शवों को नोचते हुए बीभत्स का एक चित्र यथा-

"रक्षोवसापिशितपूरितकुक्षिरन्ध्र: काकुत्स्थबाणहतहस्तिमुखाधिरूढ:।

पर्यन्तलग्नरुधिराणि मृदुप्रणादस्तुण्डानि वायसगणों रदने ममार्ज।।"[५२]

अद्भुत रस-

राम रावण के युद्ध में नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों के प्रयोग और उनसे उत्पन्न घटनाओं और दृश्यों में इस

५१. वही ९/२९ इ०सं० ।
५२. जानकीहरणम् ६/६० इ०सं० ।

रस का आस्वादन सहृदयों को अवश्य प्रभावित करता है।

शान्त रस-

शान्त रस का स्थायीभाव 'निर्वेद' है। इस रस का वर्णन 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में देवताओं द्वारा कृत-स्तुतियों में मनोहर रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त विश्वामित्र के आश्रम वर्णन में इसका सुन्दर परिपोषण हुआ है।यथा-

"विहङ्गपानाय महीरुहां तले निवेशिताम्भः परिपूर्णभाजनम्।

विशोषार्थाहितपुण्यवल्कलप्रताननम्रीकृतवृक्षमस्तकम्।।"[५३]

वात्सल्य रस-

इस रस को संस्कृत साहित्य में रस न मानकर भावध्वनि में माना जाता है, 'जानकीहरणम्' महाकाव्य में इसके स्वल्प स्थल ही हैं। रावण की भुजा से काँपते हिमालय पर पार्वती की गोद में बैठे कार्तिकेय अपने क्रीड़ाभेष को बचाने लगते है।[५४] बालक राम की बाल

---

५३. वही ५/२ इ०सं० ।

५४. "परित्रस्ते गोपयति वृक्कलाकुद्दलजे सति।
कार्तस्वरमयं शेष मातुरुत्सङ्गराङ्गिणि।।"
जानकीहरणम् इ०रा० २/४५ ।

क्रीड़ाओं में वात्सल्य का पुष्ट-पोषण देखने को मिलता है। राम के सलोने स्वभाव का एक सुन्दर दृश्य अवलोकनीय है यथा-

"अयि दर्शय तत्किमुन्दुराद् भवतो पात्रमिति प्रजोदितः।

प्रविदर्शयति स्म शिक्षाया नवकं दन्तचतुष्टयं शिशुः।।"[७५]

निष्कर्षतः "जानकीहरणम्" महाकाव्य में कवि के द्वारा प्रायः समस्त रसों की अच्छी प्रकार अभिव्यक्ति की गयी है, जो कि संस्कृत काव्य में एक विशिष्ट गरिमा का भाजन है।

❑❑

---

७५. वही ४/११ ।

सप्तम् अध्याय

सप्तम अध्याय

"जानकीहरणम्" में गुण, रीति, वृत्ति, ध्वनि, छन्द एवं दोष

गुण:-

"जानकीहरणम्" महाकाव्य में प्रसङ्गानुकूल रसानुभूति कराने में समर्थ माधूर्य, ओज, एवं प्रसाद-इन गुण त्रय का समुचित समावेश समुपलब्ध होता है। यथा- शृङ्गार वर्णन में सर्वाधिक समाश्रय माधुर्यगुण को प्राप्त हुआ है, युद्ध वर्णन में ओज गुण का तथा उपदेश, स्तुत्यादि वर्णनों में प्रसाद गुण की प्रधानता है - इनका विस्तृत वर्णन यथास्थान आगे निम्नलिखित रिक्त है।

नन्दरगीकर महोदय का 'जानकीहरण' महाकाव्य के विषय में कथन है-

"काव्य में माधुर्य के साथ सौकुमार्य है, किन्तु खोज की उपलब्धि कम है। सामान्यत: काव्य में प्रसाद गुण की प्रधानता है- इनका विस्तृत वर्णन यथास्थान आगे निम्नलिखित है।

नन्दरगीकर महोदय का 'जानकीहरणम' महाकाव्य के विषय में कथन है-

"काव्य में माधुर्य के साथ सौकुमार्य है, किन्तु ओज की उपलब्धि कम है। सामान्यतः काव्य में प्रसाद गुण का प्रवाह है। यह कुमारदास की स्वाभाविक देन है।[१]

किन्तु 'जानकीहरण' महाकाव्य का अष्टादश सर्ग तो ओज बहुल ही है। यथा-

"भ्रमद्भिर्भूरिभिर्भेरीरवैर्गम्भीर भैरवैः ।

भ्राम्यन्मन्दरमन्थानक्षुम्यतक्षीरार्णववोपमा।।

कृपाणज्योतिरालोकस्फारदुर्दशना तता।

प्रकृणच्छर संघात संरावपिहितश्रुतिः।।"[२]

साथ ही सप्तदश तथा एकोनविंशति सर्ग में भी ओज गुण की प्रधानता है।

---

१ कुमारदास तथा संस्कृत साहित्य में उनका स्थान पृ० १५, १६ ।

२. जानकीहरणम् १८/४२-४३ इ०सं०।

उदाहरणार्थ-

"परद्विपासृक्स्रवलोहितो निकृतोविद्याधर चारणे रणे।

उमासुतः शक्तिवियोरीजतो जितो भवद्भिरभ्रध्वनिभैरवै रवैः।।"[3]

तथा

"तयो रयो बाणरयोपबृंहिस्फुटत्ध्वनिस्फोटित कर्णमाहवम्।

गरुत्मदाशी विषपातदुःसहं निरीक्षितं तं विततार तत्समम्।।"[4]

आचार्य बलदेव उपाध्याय कुमारदास की कविता को कालिदास की कविता के समान प्रसाद गुण वाली मानते हैं।[5]

माधुर्य गुणः-

चित्र का द्रुति स्वरूप, आहलाद-जिसमें अन्तः करण द्रवीभूति हो जाये ऐसा आनन्द विशेष माधुर्य कहलाता है। क्रम में सम्भोग शृङ्गार, करुण, विप्रलम्भ तथा शान्त रसों

---

३. जानकीहरणम् १७/११ ।
४. वही १४/२६ ।
५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २३३ ।

एवं रसाभासों में माधुर्य गुण की अधिकता रहती है अर्थात् शान्त रस में सबसे अधिक माधुर्य होता है।[६]

प्रस्तुत लक्षण के परिप्रेक्ष्य में 'जानकीहरण' महाकाव्य का अनुशीलन पर ज्ञात होता है कि सहृदय हृदय को द्रवित करने वाला माधुर्य गुण महाकाव्य के संयोग शृङ्गार, करुण, विप्रलम्भशृङ्गार तथा शान्त रस के विषयक अभिव्यञ्जक वर्णनों में प्राप्त होता है। यथा- कौशल्या के मुख सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि कुमारदास का कथन है-

"क्रान्तिश्रिया निर्जितपद्मरागं मनोज्ञगन्धं द्वयमेव शस्तम्।
नवप्रबुद्धं जलजं जलेषु स्थलेषु तस्या वदनारविन्दम्।।"[७]

इसी प्रकार पृथ्वीपति महाराज दशरथ के सर्वतः प्रसृत धवलयश के वर्णन में माधुर्य गुण की अभिव्यञ्जना हो

---

६. "चित्त द्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्।।"
आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, ८/२ ।

७. जानकीहरणम् १/३८ इ०रा० ।

रही है। यथा-

"अखण्डमानो मनुजेश्वराणां मान्यो गुणज्ञो गुणजैर्मनोज्ञैः।

दिशा यशोभिः शरदभ्रशुभ्रैश्चकार राजा रजतावदाता।।"[८]

ओज गुणः-

चित्र का विस्तार स्वरूप दीप्तत्व ओज कहलाता है। वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में क्रम में इसकी अधिकता होती है।[९] यहाँ वीर आदि शब्द उपलब्ध हैं, अतः वीराभास आदि में भी इसकी स्थिति ज्ञातव्य है।

महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा हेतु राम लक्ष्मण द्वारा राक्षसों के साथ युद्ध किये जाने का वर्णन ओज गुण से परिपूर्ण है। रणक्षेत्र में पड़े हुए निशाचरों में शरीर खंड़ घृणा एवं भय का भाव उत्पन्न करने के कारण वीभत्स रस की अनुभूति करा रहे हैं। यथा-

---

८. जानकीहरणम् १/१३ इ०सं०।

९ "ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीरवीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।"
साहित्य दर्पण ८/४-५ ।

"मध्येनिकृत्तरजनीचरपूर्वकायापूद्दैः स्थिता भुवि निपत्य भयं वितेनुः।

रक्षःसुयुद्धविमुखेषु विभिद्य भूमीमद्धोत्थिता इव पुनः समराय दैत्याः॥"[१०]

प्रसाद गुणः-

शुष्क ईंधन में अग्नि के शीघ्र व्याप्त हो जाने की भाँति चित्त में तत्काल व्याप्त हो जाने वाला प्रसाद गुण समस्त रसों तथा रचनाओं में रह सकता है। सुनते ही जिनका अर्थ प्रतीत हो जाये ऐसे सरल तथा सुबोध पद प्रसाद के व्यञ्जक होते हैं।[११]

'जानकीहरण' महाकाव्य में माल्यवान रावण को शारीरिक सौन्दर्य एवं सुखादि के नश्वर तथा पुण्य के अनश्वर होने के कारण पुण्य का ही आश्रय ग्रहण करने का सदुपदेश देते हुए कहते हैं-

---

१०. जानकीहरणम् ५/५७ ।

११. "चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ।
स: प्रसाद समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः॥
साहित्य दर्पण, ८/७-८ ।

"रूपवन्तमपि हन्ति जरार्तिः सङ्गमे महति चास्ति वियोगः।

याति दीर्घमपि विच्युतिमायुः पुण्यमेव निरपायि भजध्वम्।।"[१२]

वस्तुतः यौवन अस्थिर है, शरीर नाशवान है तथा धनसंपत्ति चलायमान है- यह सोचकर ज्ञानी विरक्त पुरुष देखने में अच्छा पर जन्मान्तर में तीक्ष्ण फल वाला कर्म नहीं करता- महाकवि कुमारदास का यह कथन सहृदय के मन को श्रवण करते ही प्रभावित करने वाला है-

"यौवनं चलमपायि शरीरं गत्वरं वसु विमृश्य विसृष्टः।

अन्यजन्मगततिक्तविपाकं दृष्टसौम्यमपि कर्म्म न धत्ते।।"[१३]

प्राकृतिक उपादानों का अवलम्बन लेकर स्त्री पर पुरुष की प्रभुता स्थापित करते हुए तथा पुरुष को स्त्री के अभ्युदय का कारण बताते हुए महाकवि ने प्रसाद गुण व्यञ्जक पदों से युक्त निम्नलिखित श्लोक में अपने विचार व्यक्त किये हैं। यथा-

---

१२. जानकीहरणम् ५/२१ इ०सं० ।
१३. वही ५/१९ ।

"स्त्रियो न पुंसामुदयस्य साधनं त एव तद्धामविभूतिहेतवः।

तड़िद्वियुक्तोऽपि धनः प्रजम्भते विना न मेघं विलसन्ति विद्युतः।।"[१४]

स्त्रियाँ पुरुषों के अभ्युदय का कारण नहीं होती, बल्कि पुरुष ही उनके तेज तथा वैभव के कारण होते हैं। विद्युत से वियुक्त मेघ गर्जना करता है। परन्तु मेघ के बिना विद्युत नहीं सुशोभित होती।

'जानकीहरण' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में पृथ्वीपति महाराज दशरथ के शर से आहत मुनिपुत्र श्रवण कुमार का मर्मस्पर्शी विलाप प्रसाद गुण युक्त पदों में अभिव्यक्त हुआ है-

"वनेषु वासो मृगयूथमध्ये क्रिया च वृद्धान्धजनस्य पोषः।

वृत्तिश्च वन्यं फलमेषु दोषः संभावितः को ममि घातहेतुः।।"[१५]

वन में मृगसमूह के मध्य मेरा निवास है। मेरा कार्य अपने वृद्ध तथा नेत्रहीन माता-पिता का भरण पोषण

---

१४. जानकीहरणम् ९/५ इ०सं० ।
१५. जानकीहरणम् १/७८ ।

है- इमें कौन सा दोष मेरे विनाश का कारण बना? इसके आगे पुनः मुनि पुत्र का कथन है-

"व्रती विनाथे विगतापराधः स्मर्तव्यदृष्टेः पितुरन्धयष्टिः।

इत्येषु किं निष्करुणेन कश्चिदवध्यभावे गणितों ने हेतु।।"[१६]

मैं नितांत निस्सहास तथा निर्दोष तपस्वी हूँ, मैं ही स्मृति मातावशेष दृष्टिवाले नयनहीन माता-पिता का आवलम्ब हूँ। क्या इन सब में निष्ठुर आपने मेरा वध न करने का कोई कारण नहीं देखा ?

इनके अतिरिक्त रावण के अत्याचार से त्रस्त कुबेर की दीनदशा के वर्णन में,[१७] दशरथ द्वारा पत्नी के साथ उपवन में विहार करने पर उसकी सपत्नी पर हुई प्रतिक्रिया के वर्णनादि[१८] में प्रसाद गुण प्रतीत होती है।

---

१६. वही १/७९ ।
१७. वही २/२६ ।
१८. वही ३/२४ ।

रीतिः-

सुप्रसिद्ध रीति वादी आचार्य वामन के अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा है- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'।[१९] वस्तुतः विशेष प्रकार की पद रचना (शैली) की रीति कहते हैं। आचार्य वामन के शब्दों में- 'विशिष्ट पदरचनारीतिः'[२०]- यह रीति का लक्षण है। 'विशेष' का अस्तित्व गुणों पर निर्भर है अर्थात् रीति के रूप- निर्धारण में विशिष्टता का आधान गुणों के ही द्वारा होता है-

माधुर्य, ओज, प्रसादादि गुण- भेदों के आधार पर यह रीति-वैदर्भी, गौड़ी तथा पाञ्चाली - इन तीनों प्रकार की होती है- 'सा त्रेधा वेदर्भी गौड़ी या पाञ्चाली चेति।'[२१]

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने इन तीनों रीतियों को क्रमशः उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियों की संज्ञा देते हुए इनका लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

---

१९. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति। १/२/६, आचार्य वामन आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
२०. वही १/२/७ ।
२१. वही १/२/९ ।

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते।

ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा कमला परैः।।"[२२]

काव्य के आत्मभूत रस भाव आदि को उपकृत करने वाली यह रीति विश्वनाथ कविराज के मतानुसार चार प्रकार की होती है- वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली तथा लाटी।[२३]

आततायी रावण के आतंक से आतंकित देवगणों द्वारा जगत्पति विष्णु की स्तुति, नृपति दशरथ द्वारा राम को दिये गये उपदेश, प्रकृति के मृदुल रूप का चित्रण, सम्वाद आदि सब वैदर्भी रीति में रचित है। ओज गुण से परिपूर्ण युद्ध वर्णनादि में गौड़ी रीति का प्रयोग किया गया है। नन्दरगीकर महोदय 'जानकीहरण' महाकाव्य को गौड़ी से मुक्त कहते हैं।[२४] किन्तु उनको अष्टादश सर्ग प्राप्त नहीं था, अन्यथा वे ऐसा न कहते। अष्टादश सर्ग में आद्योपान्त गौड़ी रीति है।

---

२२. काव्य प्रकाश ९/८० ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी ।
२३. "वैदर्भी चाथ गौड़ी च पाञ्चाली लाटिकी तथा ----।"
साहित्य दर्पण ९/२, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली १९६१
२४. महाकवि कुमारदास तथा संस्कृत साहित्य में उनका स्थान
पृ०सं० १५-१६

महाकवि कुमारदास की वैदर्भी रीति पाञ्चाली रीति के भी गुणों से युक्त है। सीताराम जयराम जोशी के अनुसार कुमारदास की रीति पाञ्चाली है।[२५]

अस्तु महाकवि कुमारदास द्वारा प्रणीत जानकीहरण महाकाव्य में वैदर्भी, गौड़ी तथा पाञ्चाली - इन तीनों रीतियों का प्रयोग प्राप्त होता है।

वैदर्भी रीतिः-

माधर्यु व्यञ्जक वर्णो के द्वारा की हुई समास रहित अथवा लघु समासों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति कहते हैं।[२६]

वसन्तकालीन सूर्य के अस्त होने का, सुमधुर एवं सुकोमल भावों से युक्त वर्णन महाकवि कुमारदास की वैदर्भी शैली का उत्कृष्ट निदर्शन है।

---

२५. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १४८. पृ० सीताराम जयराम जोशी, लक्ष्मी बुक डिपो, कलकत्ता, १९३३ ।

२६. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।"
आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण ९/२३ ।

यथा-

"सुकुङ्कुमस्त्रीकुचमण्डलद्युति प्रवासिनां चेतसि चिन्तयातुरे।

निधाय तापं तपनः पतत्यसौ विलोलवीचावपरान्तसागर।"[२७]

गौड़ी रीतिः-

ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णों से निर्मित अधिक समासों युक्त उद्भट बन्ध को गौड़ी रीति कहते हैं।[२८]

इसी गौड़ी को 'पुरुषावृत्ति' की संज्ञा से अभिहित करते हुए काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट कहते हैं- "ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा"[२९] ओज के प्रकाशक वर्णों वाली परुषा कहलाती है।

---

२७. जानकीहरणम् ३/६४ इ०रां० ।

२८ "ओजः प्रकाशकर्वर्णैबन्धा आडम्बरः पुनः ।
समास बहुला गौडी ------ ।"
साहित्य दर्पण ९/३-४ ।

२९. काव्य प्रकाश ९/८० ।

'जानकीहरणम्' महाकाव्य में एक अति विकराल रूप वाली राक्षसी जिसका मुखमण्डल विलासिनी स्त्रियों की सद्यः कर्तितः अंगुलियों से निर्मित आभूषणों से विभूषित था, जा कटि में नरमुण्ड की पंक्ति से निर्मित मेखला धारण किये हुए थी, जिसके गतिशील होने से भयंकर शब्द होता था तथा जो रुधिर का कुकुम के समान लेप करने से वीभत्स स्वरूप वाली थी एवं अपने लहराते हुए केशों की अन्त्रपाश से बाँधे हुए थी का चित्रण ओज व्यञ्जना पदों से युक्त गौड़ी रीति में प्रस्तुत करते हुए महाकवि कुमारदास का कथन है-

"नवकृत्तविलासिनीकरप्रसवोत्तंविभूषितानना।

नृशिरस्ततिमेखलागुणस्फुरणक्रूरकटुक्वणत्कटिः।।

परितः स्कुरदन्तपाश्यया पारिणद्धाकुलकेशसन्ततिः।

घनशोणितपङ्ककुंकुमप्रविलिप्तस्तनकुम्भभीषणा।।[30]

---

३०. जानकीहरणम् ४/६०-६१ इ०सं०।

पाञ्चाली रीतिः-

उक्त दोनों रीतियाँ अर्थात् वैदर्भी तथा गौड़ी के जो शेष वर्ण है। अर्थात् जो वर्ण न माधुर्य के व्यञ्जक हैं न ओज के- उनसे जो रचना की जाय तथा जिसमें पांच छः पदों का समास हो वह रीति ' पाञ्चाली' कहलाती है।"[३१]

यथा-

"स्वमङ्कमारुहय सुखं परिष्वपत् कुरङ्गशावप्रतिबोधङ्कया।

चिरोपवेशव्यथितेऽपिविग्रहे सुनिश्चिलासीनजरत्तपोधनम्।।"[३२]

रात्रि में उदित प्रकाशमान चन्द्रमण्डल पर दृष्टिपथ में आने वाले गलित अङ्कों के विषय में कवि की कल्पना पाञ्चाली रीति से युक्त निम्नलिखित श्लोक में रूप में प्रकट हुई है।

---

३१. "वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
समस्तपञ्चषणपदो बन्धः पाञ्चालिका मता।"
आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण ९/३-४ ।

३२. जानकीहरणम् ५/४ इ०सं० ।

यथा-

"पीतमेतदलिवृन्दमेचकं ध्वान्तमेव सकलं हिमात्विषः।

स्वच्छविग्रहतया शशकृतिच्छद्मना वहिरिवास्य लक्ष्यते।"[33]

वृत्तिः-

वृत्तियाँ चार होती है- कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती। इनके विषय में आचार्य विश्वनाि लिखते हैं-

" शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।

रसे रौद्रे च वीभत्से वृतिः सर्वत्र भारती।।"[34]

'जानकीहरण' महाकाव्य का अङ्गी शृङ्गार है इसलिए इसकी वृत्ति को निर्विवाद रूपेण कैशिकी स्वीकार करना चाहिए।

---

३३. वही ८/७६।

३४. "काव्यस्य आत्मा ध्वनिः"
ध्वन्यालोक १/१ आचार्य आनन्द वर्धन ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

ध्वनि:-

साहित्य में ध्वनि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार- काव्य की आत्मा ध्वनि है। उनका कथन है-

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्यस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।

यत् तत् प्रसिद्धावयवतिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।"[३५]

आचार्य विश्वनाथ ने ध्वनि (व्यञ्जना) को दो प्रकार का प्रतिपादित किया है- लक्षणामूला एवं अभिधामूला-- "भेदोध्वनेरपि द्वावुदीरितौ लक्षणभिछामूलौ।"[३६]

लक्षणामूला के आचार्य मम्मट ने दो भेद किये है- अर्थान्तरसङ्क्रमित तथा अत्यन्त तिरस्कृत। इसी लक्षणामूला को उन्होंने अविवक्षित वाच्य कहा है-

---

३५. "काव्यस्य आत्मा ध्वनि:"
ध्वन्यालोक १/४ आचार्य आनन्द वर्धन ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

३६. साहित्य दर्पण ४/२, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६१ ।

"अविवक्षितवाच्यो यस्तत्र वाच्यं भवेद् ध्वनौ।

अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम्।।"[३७]

जहाँ शब्द का मुख्य अर्थ प्रकरण में स्वयं बाधित होने के कारण अपने विशेष स्वरूप अर्थान्तर में परिणत है वहाँ वाच्य के अत्यन्त तिरस्कृत होने के कारण अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है।

'जानकीहरण' महाकाव्य में लक्षणामूला व्यञ्जना के निम्नलिखित उ़दाहरण है-

"वासन्तिकस्यांशुचयेन भनोर्हेयन्तमालोक्य हतप्रभतम्।

सरोरुहामद्धृतकण्टकेन प्रीत्येव रम्यं जहसे वनेन।।"[३८]

उपर्युक्त श्लोक में कमल वन का हँसना अर्थ बाधित है। यहाँ हास शब्द विकास रूप अर्थ का बोध कराता है, जिससे सौरभ एवं सौन्दर्य अर्थ व्यञ्जित होता है। अत: हास शब्द का अर्थ विकास में संक्रमित हो जाने से यहाँ अर्थान्तर संक्रमित ध्वनि है।

---

३७. काव्य प्रकाश ४/२४, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी।
३८. जानकीहरणम् ३/१ ।

इसी प्रकार लक्षणामूला व्यञ्जना के द्वितीय प्रकार अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि की प्राप्ति 'जानकीहरण' महाकाव्य के अधोलिखित पद्य में हो रही है।

यथा-

"परिस्फुरत्काञ्चनकान्तिरन्तिक प्रयाततारो हरिसैन्यसेवितः।
दिवाकराचुम्बिततुङ्गमस्तको विभाति सुग्रीव इवैष मन्दरः।।"[३९]

यहाँ चुम्बन अर्थ बाधित होकर सामान्य संयोगरूप अर्थ का व्यञ्जना है। अतः अत्यन्त तिरस्कृतवाच्यध्वनि स्पष्ट है।

अभिधामूलक व्यञ्जना (विवक्षितान्यपरवाच्य) के भी आचार्य मम्मट के मतानुसार दो भेद है-

१. असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य तथा

२. संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ।

---

३९. जानकीहरणम् २०/३० ।

"विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः ।

कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः।।[४०]

अभिधामूलक व्यञ्जनागत असंलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य में, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, रस भाव आदि की प्रतीति विभावादि ज्ञान पूर्वक ही होती है, अतः कार्य-कारण के पौर्वापर्य का क्रम तो अवश्य रहता है, परन्तु वह अति शीघ्र हो जाने के कारण लक्षित नहीं होता।।

यथाः-

"कोपिता चिरनिवृत्तसंगतिः सुप्तमेत्य परिबोधशङ्किनी।

हस्तरुद्धचलकुण्डला धृतश्वासवृत्ति शनकैश्चुचुम्ब सा।।"[४१]

अङ्गी रस शृङ्गार के संयोग पक्ष के वर्णन से युक्त उपयुक्त श्लोक में प्रणय-कुपिता सीता का रतिभाव व्यञ्जित हो रहा है। इस प्रकार रसानुभूति में क्रम के लक्षित न होने के कारण यहाँ असंलक्ष्यक्रमध्वनि है।

---

४० काव्य प्रकाश ४/२५ ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी।

४१. जानकीहरणम् ८/५१ ।

संलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य अर्थ प्रतीति होता है।

यथा-

"अभुष्य शृङ्गे दुहितुर्यहीभृतः तपश्चरन्त्यास्सविता समीपगः।

शशाङ्कशोभामवहद्विलोचन प्रभततिश्यामितमध्यमण्डलः।।"[४२]

महाकवि कुमारदास द्वारा रचित उपर्युक्त श्लोक में वाच्यार्थ के अनन्तरक्रम से हिमालय के शृङ्ग अत्युन्नत हैं- यह व्यङ्ग्यार्थ प्रतीत हो रहा है।

छन्दः-

संस्कृत काव्य की आत्मा रस है। श्रोता एवं पाठक के हृदय में रसोन्मीलन अर्थात् आनन्द का उन्मेष ही काव्य का चरम लक्ष्य है। यही कारण है कि रस की अजस्र धारा प्रवाहित करने के लिए कवि काव्य के अन्य अङ्गो यथा- रीति, गुण अलङ्कार छन्दादि के प्रयोग के विषय में सर्वदा सचेष्ट रहता है, क्योंकि इन काव्याङ्गो का काव्य में

---

४२. वही २०/४१

वर्णनानुकूल औचित्यपूर्ण प्रयोग होने पर ही कवि रससिद्ध में सफल हो सकता है।

जिस प्रकार विविध वर्णों के उच्चारण हेतु कंठ, तल्वादि विभिन्न स्थानों का विधान है तथा विभिन्न प्रकार के वर्ण पृथक-पृथक रस भाव तथा अलङ्कारादि के व्यन्जक हैं तथैव भिन्न-भिन्न रसों की व्यन्जना के लिए भिन्न-भिन्न छन्दों का विधान है। अतएव यह विचारणीय है कि किस विशेष छन्द में रचित श्लोक कौन से रस की पुष्टि के लिए पूर्णरूपेण उपयुक्त है? कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य में रससिद्ध के लिए केवल शब्द योजना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु तदर्थ छन्द योजना भी उतनी अपेक्षित है।

महाकाव्योपयुक्त छन्द योजना का परिगणन उन महाकवियों के काव्यों से ही संभव है जो अपनी पीयूषवर्षिणी वाणी के अविरल प्रवाह से साहित्य को समृद्ध तथा सहृदय रसिक जनों को तृप्त करते रहे हैं। नैसर्गिक

प्रतिभा तथा अर्जित विदग्धता मंडित विविध विषयों के ज्ञान से सन्निविष्ट महाकवियों द्वारा सृष्ट, अनुपम ग्रन्थरत्न हृदय को तुष्ट एवं मस्तिष्क को पुष्ट करने में सम्यक् रूपेण सफल हुए हैं।

काव्य में उचित छन्द परियोजना के सम्बन्ध में महाकवि क्षेमेन्द्र का कथन है कि काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार वृत्तों अर्थात् छन्दों का विभागयुक्त विनयोग करना चाहिए-

"काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।

कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।"[४३]

इसी प्रकार काव्य में उचित छन्द प्रयोग की महत्ता को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न अवसरों पर किये गये विविध वर्णनों के लिए उपयुक्त विशिष्ट छन्दों का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। छन्दयोजनाविषयक

---

४३. सुवृत्ततिलकम् ३/७ चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस - बनारस सिटी, सं० १९८४ ।

साहित्यशास्त्र नियमों के अनुसार- किसी सर्ग के आरम्भ में कथा के विस्तार का संग्रह करने में, उपदेश अथवा वृतान्त कथन में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग सज्जनों द्वारा प्रशंसनीय होता है।[४४] शृङ्गार की आलम्बन रूप उदार नायिका के सौन्दर्य का वर्णन तथा शृङ्गार के अङ्गभूत ऋतुराज बसन्त आदि का वर्णन उपजाति छन्द में करना चाहिए।[४५]

चन्द्रोदय आदि विभावों का वर्णन रथोद्धता में तथा षाड्गुण्यादि नीति सम्बन्धी विषयों का वर्णन वंशस्थ छन्द में शोभित होता है।[४६] वीर एवं रौद्र के मिश्रण में बसन्ततिलका छन्द उपयुक्त होता है[४७] तथा सर्ग के अन्त में द्रुत ताल की भाँति मालिनी छन्द का प्रयोग करना चाहिए।[४८] अध्याय का प्रारम्भ तथा विभक्त करते समय शिखरिणी छन्द तथा औदार्य, रुचि एवं औचित्य आदि के वर्णन में हरिणी छन्द का प्रयोग उचित है। आक्षेप, क्रोध

---

४४. साहित्य दर्पण पर श्रीरामचरण तर्कवागीश भट्टाचार्य की विवृत्ति टीका पर श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी की छायानायक टिप्पणी, पृ० ४०२, निर्णय सागर प्रेस बम्बई।
४५. वही पृ० ४०२ ।
४६. वही पृ० ४०२ ।
४७. वही पृ० ४०२ ।
४८. वही पृ. ४०२ ।

तथा धिक्कार के लिए पृथ्वी भरक्षमा तथा वर्षा, प्रवास, व्यसन अर्थात् विपत्ति आदि के वर्णन हेतु मन्दाक्रान्ता छन्द सुशोभित होता है। नृपादियों की वीरता तथा स्तुति के लिए शार्दूलविक्रीड़ित तथा आँधी अर्थात् वेग-सहित वायु के वर्णन के स्रग्धरा छन्द का प्रयोग करना चाहिए।[४९]

महाकवि कुमारदास ने अपनी कृति में मात्रिक तथा अनुष्टुप आदि तथा वर्णिक यथा- उपजाति आदि इन द्विविध छन्दों का प्रयोग किया है। वर्णिक छन्दों में केवल सम-वृत्तों यथा- इन्द्रवजा, वंशस्थ, वंसततिलका आदि एवं अर्द्धसमवृत्तों यथा- पुष्पिताग्रा, वियोगिनी आदि ही कवि द्वारा प्रयुक्त किये गये हैं। विषय वृत्तों का प्रयोग इस महाकाय में उपलब्ध नहीं होता। महाकवि ने २२ छन्दों का प्रयोग अपने महाकाव्य में कियां है।

जानकीहरण के प्रथम सर्ग का आरम्भ उपजाति छन्द वद्ध श्लोकों से एवम् अवसान पुष्पिताग्रा छन्दबद्ध

---

४९. साहित्य दर्पण पर श्रीरामचरण तर्कवागीश भट्टाचार्य की विवृत्ति टीका पर श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी की छायानायक टिप्पणी, पृ० ४०२, निर्णय सागर प्रेस बम्बई।

श्लोकों से होता है। सर्ग के अन्त में भिन्न वृत्त के प्रयुक्त होने के नियमानुसार अन्तिम तीन श्लोकों मे अन्वर्थ नाम पुष्पिताग्रा छन्द का विनियोग हुआ है।

द्वितीय सर्ग मे अनुष्टुप, पुष्पिताग्रा, तथा शार्दूलविक्रीडित वृत्तों मे श्लोक निबद्ध है। तृतीय सर्ग में विषयवस्तु के अनुसार पुनः उपजाति, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी तथा स्रगधरा से पाँच छन्द उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ सर्ग में वियोगिनी, जो कि वैतालीय का एक प्रकार है, नर्दटक तथा शार्दूलविक्रीडित वृत्तों में बद्ध श्लोक वर्णित है।

पञ्चम सर्ग वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, प्रहर्षिणी, तथा सर्गान्त में पुनः वसन्त तिलकावृत्त में विनियोजित श्लोकों को प्रस्तुत करता है। षष्ठ सर्ग में अनुष्टुप, प्रहर्षिणी तथा वसन्त तिलका छन्द प्राप्त होते हैं। सप्तम सर्ग में सर्व प्रथम उपजाति तथा सर्ग के अन्तिम श्लोक में मालिनी छन्द उपलब्ध होता है। अष्टम सर्ग के प्रारम्भ में रथोद्धता, तथा अन्त में नर्दटक छन्द प्राप्त होते हैं।

नवम सर्ग में वंशस्थ, वसन्ततिलका तथा नर्दटक छन्दों में निबद्ध श्लोक प्राप्त होते हैं। दशम् सर्ग में अनुष्टुप वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग हुआ है।

एकादश सर्ग में द्रुपविलम्बित, वसन्ततिलका, पृथ्वी शिखरिणी तथा पुनः शार्दूलविक्रीडित छन्दों का विनियोग हुआ है। द्वादश सर्ग में वंशस्थ, पुष्पिताग्रा तथा पृथ्वी छन्दों का प्रयोग होता है। त्रयोदश सर्ग में प्रमिताक्षरा, पृथ्वी तथा हरिणी छन्द उपलब्ध होते हैं। चतुर्दश सर्ग के अन्तिम श्लोक में मन्दाक्रान्ता तथा शेष समस्त श्लोकों में द्रुतविलम्बित छन्द है।

पञ्चदश सर्ग के प्रारम्भिक अधिकांशश्लोक में स्वागता, तत्पश्चात् उपेन्द्रवज्रा, शार्दूलाविक्रीडित तथा सर्गान्त श्लोक में स्रगन्धरा छन्दों की योजना उपलब्ध होती है। षोडश सर्ग के श्लोक पुष्पिताग्रा, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा छन्दों में संग्रथित है।

सप्तदश सर्ग में वंशस्थ तथा मन्दाक्रान्ता छन्दों का प्रयोग हुआ है। अष्टादश सर्ग में अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, तोटक, पृथ्वी तथा शार्दूलविक्रीडित वृत्तों में बद्धश्लोक प्रस्तुत किये गये है। एकोनविंश सर्ग में वंशस्थ, वसन्ततिलका मन्दाक्रान्ता तथा स्रगधरा छन्दों में श्लोक वर्णित है। विंशतितम् सर्ग अन्य सर्गों की अपेक्षा सर्वाधिक छन्दों यथा- वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, रुचिरा, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा का प्रयोग स्थल है।

इस प्रकार महाकवि कुमारदास द्वारा 'जानकीहरण' महाकाव्य में प्रयुक्त वृत्त विषयक विवरण पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि कतिपय सर्गों में केवल दो छन्दों का प्रयोग हुआ है।[५०] इन सर्गों में कवि के द्वारा केवल एक ही वृत्त का अवलम्बन होकर सम्पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है तथा महाकाव्य शास्त्रीय नियमानुसार सर्गान्त में वृत्त परिवर्तित कर दिया गया है। महाकवि

---

५०. जानकीहरणम् १, १४ तथा १७ ।

कुमारदास द्वारा प्रयुक्त एक सर्ग में विविध प्रकार के छन्दों की अधिकतम् संख्या है।[५१]

'जानकीहरण' महाकाव्य में प्रस्तुत महाकवि कुमारदास का छन्द विधान अधिकांशतया काव्यशास्त्रीय नियत सम्मत है। सर्ग के प्रारम्भ में, कथा विस्तार संग्रह में तथा नृपति दशरथ द्वारा राम को दिये गये उपदेशों आदि में अनुष्टुप छन्द की योजना की गयी है।[५२] शृङ्गार रस में आलम्बन वर्णन,[५३] युद्ध के परिणाम वर्णन,[५४] तथा सीता के अग्नि प्रवेश वर्णन में,[५५] वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है। शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव यथा- चन्द्रोदयादि वर्णन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग[५६] साहित्यशास्त्र नियमानुमोदित है। संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत महारानी कौशल्य का नख-शिख सौन्दर्य वर्णन,[५७] शृङ्गार के अंगभूत बसन्त का तथा उपवन एवं जल विहार के प्रसङ्ग में रमणियों के अङ्गों का वर्णन[५८]

---

५१. वही २०वाँ सर्ग ।
५२. जानकीहरणम् २/१-७७, ६/१'५४, १०/१-८१, १८/१-६८ ।
५३ वही ६/५९-६० ।
५४ वही ५/५५, ५६, '५८, ६०, ६१ ।
५५ वही १९/६०-६२ ।
५६. वही ८/५५ - ९२ ।
५७. वही १/२७-४१, ३/१-६३ ।
५८. वही १/२७-४१, ३/१-६३ ।

तथा नायिका सीता के रूप वैभव का वर्णन आदि उपजाति छन्द में निबद्ध है।[५९]

महाकवि कुमारदास ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तनुसार राम के पराक्रम का वर्णन,[६०] वीरता तथा उसके प्रभाव का वर्णन,[६१] मेघ तथा अग्रबोधि नामक अपने मातुलों की शूरता का वर्णन शार्दूलविक्रीडित छन्द में किया है।[६२]

मालिनी छन्द सर्गान्त में उपनिबद्ध है।[६३] वर्णन प्रायः वंशस्थ छन्द में प्रस्तुत किये हैं, यथा- आश्रय तथा युद्ध वर्णन,[६४] शरद् ऋतु वर्णन[६५] तथा लङ्का से अयोध्या प्रत्यागमन के समय मार्गगत स्थानों एवं दृश्यों का वर्णन आदि।[६६]

---

५९. वही ७/१-२० ।
६०. वही ४/७५/ ।
६१. वही १५/६१, १०/८४-८९ ।
६२. जानकीहरणम २०/६१-६२ ।
६३. वही ६/६२ ।
६४. वही ५/१-५४ ।
६५. वही १२/१-२० ।
६६ वही २०/१-५१ ।

भावानुकूल एवं अवसरानुकूल छन्दों का प्रयोग महाकवि कुमारदास की प्रमुख विशेषता है। 'जानकीहरण' महाकाव्य में रामजन्म आदि वर्णनों के प्रसंग मे प्रयुक्त वियोगिनी वृत्त[६७] आनन्ददायक क्षणों में कदचित, अनुचित न प्रतीत हों, यह विचारकर कवि ने सर्ग का आरम्भ सन्तानहीन नृपति दशरथ का शोकाकुल मनः स्थिति से किया है।[६८]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि महाकवि कुमारदास ने छन्दों का प्रयोग निपुणता के साथ किया है, परन्तु भारवि के समान अनेक बदलते हुए छन्दों के प्रयोग का विस्तार न करके उन्होंने इस विषय में अधिकतर कालिदास के ढंग का ही अनुसरण किया है।[६९]

---

६७. वही ४/१-१५ ।
६८. वही ४/१ ।
६९. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० सं० १५१ ए०बी० कीथ, भाषान्तरकार - डा० मंगलदेत शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास १९६० ।

दोष:-

कुमारदास कृत 'जानकीहरणम्' महाकाव्य को संस्कृत के उच्चकोटि के महाकाव्यों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसमें जहाँ रसदीप्ति, अलङ्कार सन्निवेश, गुण एवं रीति गठन का सुन्दर संयोग है, वहीं कुछ दोष भी मिल जाते हैं। जिसमें सर्व प्रथम - अङ्गभूत वीर रस का अधिक विस्तार से वर्णन है। महाकाव्य का अङ्गीरस शृङ्गार है पर उसमें अङ्गभूत वीर (युद्ध) का इतना विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि वही प्रधान बन जाता है।

विरुद्ध विभाव-परिग्रह:-

लङ्का दहन में नग्न जंघाओं वाली राक्षसियों को देखकर अग्नि किसी हठकायी पुरुष की भाँति उन्हें बलात् चूमने लगता है। यहाँ भयानक के विरोधी शृङ्गार का समावेश हो जाने से अनास्वाद्यता आ गयी है।

अनंग कीर्तन:-

कथा में प्रवाह अत्यन्त मन्दतम है, क्योंकि कथान्तर का ही वर्णन विस्तार से किया गया है।

दुरूहता:-

अठारहवें सर्ग मे महाकवि कुमारदास चित्रालङ्कारों के बन्धन में फँसकर काव्य को कष्टसाध्य बना देता है। इसके साथ ही यमकों की प्रधानता से मुख्य कथ्य की सुन्दरता अलङ्कार चमत्कार से तिरोहित हो जाती है।

काव्य का आठवाँ सर्ग कालिदास की तरह श्लेषदोष से युक्त है।

दूरान्वय:-

'जानकीहरण' में दूरान्वय दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं। द्वितीय सर्ग के ५४वें श्लोक में 'वलिं वज्राय' के साथ 'कुर्वती' का अन्वय विकष्ट हो गया है। जिसमें अर्थावबोध में व्यवधान और रसनिष्पति सबाध हो जाती है।

इसी प्रकार 'सुमन्त्रसूत्रस्य' आदि पदों में अपुष्टार्थ दोष आ गया है।

'असेकिम्मलता' 'कृत्त्रय' 'सौख्यरात्रिका' 'माशाब्दिक' आदि अनेक अप्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग से काव्य 'अप्रयुक्त' दोष युक्त हो गया है। तृतीय सर्ग के ३१वें श्लोक 'पद्म सितोऽयं' इत्यादि श्लोक में पद्म पद के पुल्लिङ्ग प्रयोग में भी 'अप्रयुक्तत्व' दोष आ गया है।

विद्वानों की दृष्टि में अनेक 'अपाणिनीय' प्रयोगों के चलते 'च्युतसंस्कृति' का भी दोष 'जानकीहरण' महाकाव्य पर लगता है। जब कि डा० यदुनन्दन मिश्र के अनुसार यह दोष नहीं व्याकरण बहुज्ञता रूप गुण ही माना जाना चाहिए।

❑❑

अष्टम् अध्याय

अष्टम् अध्याय

सांस्कृतिक विवेचन

कवि समाज के क्रोड में ही पलता है और अपने विकास-रस को वहीं से ग्रहण करता है। समाज की परिस्थितियाँ कवि को प्रभावित करती रहती है और वह समाज से ही काव्य-सर्जना की प्रेरणा ग्रहण करता है। कवि चाहकर भी समाज के प्रभाव से नहीं बच सकता है। समाज का प्रभाव कवि और उसके काव्य पर पड़ता ही है।

महाकवि कुमारदास ने अपने महाकाव्य "जानकीहरण" मे तातत्कालिक जन-जीवन के विशद् चित्र समाहित किये है। भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, खान-पान, वेश-भूषा, वस्त्र आभूषण, शृङ्गार सज्जा, शिष्टाचार आदर्श, क्रीड़ा विनोद, लोक विश्वास तथा कला- "विज्ञानादि के जो वर्णन प्रस्तुत महाकाव्य में आये हैं, उनका सूक्ष्म विवरण निम्नलिखित है-

भौगोलिक वातावरण:-

कवि की निवासभूमि पर्वतों की अधिकता से ओतप्रोत है। पुष्पकमान से अयोध्या लौटते समय राम को लङ्का अपने शैल और कानन सहित सागर में निमज्जित होती प्रतीत होती है।[१] महाकवि का देश सुन्दर और स्वच्छ जल वाले तड़ागादि से शोभित है। वहाँ गहोद्यानगत जलाशय,[२] प्रमद-वन-स्थित "दीर्घिका",[३] हंस सेवित "नगर परिखा"[४] पंकिल जल वाले "स्वाभाविक खातक"[५] एवं क्षुद्र पल्लव[६] भी है। कवि ने तृतीय सर्ग में बसन्त,[७] एकादश सर्ग में वर्षा[८] तथा द्वादश सर्ग में शरद,[९] का विस्तृत एवं मञ्जुल वर्णन किया है। किन्तु षड्ऋतुओं में से अन्य "शिशिर"[१०] "हेमन्त"[११] एवं "ग्रीष्म"[१२] के स्थान-स्थान पर संकेत मात्र किये गये हैं।

---

१. जानकीहरणम २०/१० इ०सं० ।
२ वही १/३६
३ वही ३/३२
४ वही १/५
५ वही ५/९
६ वही ४/२५
७ वही १/१३
८ वही ११/३८-८०
९ वही १२/१-१०
१० वही ३/४
११ वही ३/९
१२ वही ३/१२

वेतस[१३] और सल्लकी[१४] आदि जलपादप तथा कुन्द[१५] प्रियंगु[१६] और माधवी[१७] आदि लताओं ने भी "जानकीहरण" महाकाव्य में स्थान पाया है। आम,[१८] तमाल,[१९] अशोक,[२०] अगरु,[२१] करवीर[२२] तथा शमी[२३] इत्यादि वृक्षों के उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं। हंस,[२४] मल्लिकाक्ष,[२५] मदगु,[२६] मयूर,[२७] शुक,[२८] कोकिल,[२९] आदि पक्षियों का तथा मृग,[३०] गण्ड,[३१] वन्य शूकर,[३२]आदि तृण जीवी, हाथी[३३] आदि लता पत्रादि सेवी, वानर[३४] आदि फल भक्षी और सिंह,[३५] तेंदुआ[३६] आदि मांसाहारी जन्तु प्राप्त थे। कीट पतंगो में

---

१३ वही १/६३
१४ वही ९/२३
१५ जानकीहरणम ८/१९ इ०सं० ।
१६ वही ३/२१
१७ वही ३/२१
१८ वही ३/१०
१९ वही २०/१७
२० वही ३/५,६,१०,२४
२१ वही १/५२
२२ वही ३/६, १४
२३ वही १/१
२४ वही १/५, ३/२९
२५ वही ३/८१, १६/३६
२६ वही ३/३०,
२७ वही १/१०, ५/१
२८ वही १२/१५
२९ वही ४/७३
३० वही १/५३, ५४, ५६
३१ वही १/६१
३२ वही १/६२
३३ वही ४/५५
३४ वही ५/३
३५ वही १/८८
३६ वही १/६०

भ्रमर,[३७] मकड़ी,[३८] उद्देहिका[३९] (दीमक) इत्यादि का पाया जाना भी सूचित है। अजगरों[४०] का प्रायः पर्वतों की कन्दराओं में निवास वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कवि के देश में सर्पों का बाहुल्य था।

राजनीतिक स्थिति

युद्ध उन दिनों साधारण बात थी। शरद् काल युद्ध के लिए सर्वाधिक अनुकूल माना जाता था। यह शरद् के लिए "समरोद्यमक्षामा" पद के प्रयोग से प्रकट होता है।[४१] उन दिनों न अतिवृष्टि की बाधा होती है, न सूर्यातप से सन्ताप है। वाल्मीकि ने भी शरत् काल के आने पर लंका में युद्ध की सुकरता प्रदर्शित की है।[४२] वाल्मीकि के युग की भाँति उस समय की मल्ल युद्ध एक विशिष्ट युद्ध कला के रूप में प्रतिष्ठित था। "रामायण" में रावण एवं सुग्रीव के बीच भी भीषण मल्लयुद्ध[४३] की भाँति "जानकीहरण" में सुग्रीव और

---

३७ वही ३/८
३८ वही ४/५६
३९ वही ६/११
४०. जानकीहरणम् १/४९, ६/२१ इ०सं० ।
४१ वही १२/३३
४२ रामायण ४/२६/१७
४३ वही सुन्दरकाण्ड सर्ग ४० ।

बालि का मल्लयुद्ध बड़ी सूक्ष्मता एवं विस्तार से वर्णित है। मल्लयुद्ध के तत्तत् दाँव पेचों का महाकवि ने परिचय दिया है।[४४] अमात्यादि अधिकारियों की नियुक्ति के समय पर्याप्त सावधानी आवश्यक मानी जाती थी। दशरथ ने कहा कि गुणी, कुलीन और पुराने सेवकों को ही सचिव बनाना चाहिए जिससे उनसे किसी अनिष्ट की आशंका न रहे।[४५] उस समय सेना बड़ी सुसंयत होती थी। "बलकायनिम्नगा" से ध्वनित होता है कि वह पुरप्लावन की भाँति नहीं, अपितु सदावाहिनी की तरह मर्यादित हुआ करती थी। अयोध्या लौटकर प्रासाद-द्वार से प्रवेश करने के उपरान्त सैनिकों का बँट कर राज प्रांगण के दोनों पार्श्वों में अंजलिबद्ध होकर खड़ा हो जाना सेना के सुनियमित एवं अनुशासित होनें का सूचक है।[४६] सेना का ततिबद्ध प्रमाण एक अन्य प्रमाण है।[४७]

राजा के प्राण सदैव संकट से युक्त रहते थे। विश्वामित्र की दशरथ से यह उक्ति कि "राजा का प्राण-घात उसके अपने ही आदमी किसी भी समय कर सकते हैं, वह

---

४४ जानकीहरणम् २५/३७ ।
४५ जानकीहरणम् १०/३७ इ०सं० ।
४६ वही ९/६६,
४७ वही ५/२७,

शठ-भृत्यों से सदा घिरा रहता है, उससे मीठी-मीठी बातें करने वाले भी अन्दर ही अन्दर उसके शत्रु होते हैं, ऐसी स्थिति में उसकी कुशलता बड़े भाग्य से ही होती है" भी उक्त सत्य पर प्रकाश डालती है।[४८] प्राणों के संशय-ग्रस्त होने पर भी कुलव्रत का अत्याग,[४९] कुलोचित यश की रक्षा,[५०] दिग्विजय से राज्य को सुदृढ़, सुरक्षित एव विस्तृत करना।,[५१] सुहृज्जनों का अभ्युदय तथा शत्रुओं का दर्प मर्दन,[५२] शरणागत का अभिरक्षण[५३] आदि राजाओं के कर्तव्य थे। तात्कालिक नरेश स्वेच्छाचारी नहीं थे। दिग्विजय की परम् पुरातन प्रथा प्रचलित थी। दशरथ ने अपने पुत्र राम से कहा है "बिना पड़ोसी राजाओं को पराजित किये किसी भी राज्य की सुरक्षा संकट में रहती है क्योंकि वे किसी भी समय आक्रमण करके राज्यापहरण कर सकते हैं।[५४] साम, दान, दण्ड, भेद इन चार उपाय साधनों पर लोगों की अटूट आस्था थी। अंगद को रावण की सभा में यह जानने के लिए भेजा गया था कि उक्त चार उपाय साधनों में से किसका

---

४८ जानकीहरणम् ४/१८ इ०सं०।
४९ वही ४/४२,
५० वही ४/३१,
५१ वही ४/३२,
५२ वही ४/३६,
५३ वही ४/३७,
५४ वही ४/३२,

प्रयोग सिद्धिपद होगा।[५५] वाल्मीकि की भाँति[५६] कुमारदास भी मानते हैं कि अन्य उपायों के असफल होने पर ही दण्डनीति को अपनाना चाहिए। महाकवि का विश्वास है कि अन्य साधनों के दु:साध्य होने पर चण्डदण्ड वाला भूपति अदुष्टायति तथा विपुल फल की प्राप्ति करता है-

"इतरोपायदु:साध्ये चण्डदण्डो महीपति: ।

अदुष्टायत्मसौ नीतेरश्नाति विपुलं फलम्।।"[५७]

उस समय चोरी अत्यधिक हुआ करती है- ऐसा प्रतीत होता है। "कुष्ठ ग्रह (फाँसी) जैसे कठोर दण्ड का भी उस समय प्रचलन था। जिसके त्रास से मेघ रावण के यहाँ अकालवृष्टि किया करते थे।[५८] पूर्व में स्थित "कटाह" द्वीप से कवि परिचित है।[५९] चीन से कौशेय वस्त्रों के आयात की सूचना अन्तरंग प्रमाण से प्राप्त होती है।[६०] कवि "तुष्क देश" की श्री समृद्धि का जानकर है। वह उसे "श्रीवासरम्य"

---

५५ वही १५/१,

५६ "अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते।
तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिण:।।"
रामायण ६/९/८ ।

५७ जानकीहरणम १०/३० इ०सं० ।

५८ वही २/६६,

५९ वही १/१७,

६० वही १/४,

कहता है।[६१] "दिग्दक्षिणा" से कवि का अभिप्राय स्पष्टतः "दक्षिण भारत" से है, क्योंकि उस सर्प बहुल कहकर वहाँ "काञ्ची" का अवस्थान सूचित किया गया है।[६२] वहाँ के निवासी निःसन्देह बड़े वीर और पराक्रमी रहे होंगे तथा उन्होंने दशरथ की सेना का डटकर सामना किया होगा, क्योंकि कवि उक्त दिशा को "कर्कशयत्नभोगा" कहता है।[६३]

इस प्रकार स्पष्ट है कि उस समय सिंहलद्वीप पूर्व में "कटाहद्वीप" तक पश्चिम में "तुरुष्क" तक सम्पर्क स्थापित कर चुका था। दक्षिण भारत से उसके परम् प्रगाढ़ अटूट सम्बन्ध को अस्वीकारा नहीं जा सकता।

सामाजिक स्थिति

वैदिक काल में जिस वर्ण व्यवस्था का अंकुरण हुआ,[६४] तथा रामायण काल में जो पूर्ण पल्लवित हुई,[६५] उसका अस्तित्व "जानकीहरण" के रचना काल में भी था,

---

६१ वही १/२०,
६२ वही १/१८
६३ जानकीहरणम् १/१८ ।
६४ ऋग्वेद १०/९०/१२ ।
६५ रामायण ४/४/६,

इसकी पुष्टि परशुराम जी के लिए "द्वितीय वर्णस्यनिहन्तुः"[६६] कथन से होता है।

पूर्वोक्ति उद्धरण में क्षत्रिय कुलोद्भूत राम को "द्वितीय वर्ण" वाला कहना यह प्रकाशित करता है कि उस समय प्रचलित वर्ण व्यवस्था में उत्कर्षापकर्षबोधक क्रम ने भी स्थान पर लिया था। ऊँच नीच की यह भावना उस समय और भी स्पष्टं हो जाती है जब राम को राजधर्मोपदेश देते हुए दशरथ कहते हैं कि "नीचे कुल के व्यक्ति को गुण से युक्त होने पर भी उच्चपद नहीं देना चाहिए, क्योंकि रत्न-जटित होने पर भी चरण-पादुका कोई सिर पर धारण नहीं करता।[६७] उस युग में ब्राह्मण,[६८] क्षत्रिय,[६९] वणिक,[७०] बन्दी,[७१] सूत,[७२] बल्लव,[७३] शाकुनिक,[७४] मातङ्ग,[७५] मृगाविध[७६] (व्याध) इत्यादि जातियों के अस्तित्व की सूचना मिलती है।

---

६६ जानकीहरणम् ९/४५ ।
६७ जानकीहरणम् १०/३५ इ०सं०।
६८ वही १/४३, ३/२ आदि।
६९ वही १/१,
७० वही १/१८,
७१ वही ३/७६
७२ वही १/४३,
७३ वही ३/३१,
७४ वही २/२२,
७५ वही १०/३६,
७६ वही १०/२५,

कुमारदास के समय में आश्रम व्यवस्था पर लोगों का अटूट विश्वास था। 'ब्रह्मचर्याश्रम' का जिसमें अर्थ और धर्म के उर्पाजन के लिए तैयारी की जाती है, तथा 'गृहस्थाश्रम' का जिसमें काम और अर्थ की पूर्ति ही नहीं अपितु धर्म के आचरण द्वारा मोक्ष-मार्ग भी प्रशस्त किया जाता है- कवि ने नाम ग्रहण द्वारा कहीं भी उल्लेख या वर्णन नहीं किया, फिर भी वे स्वयं संवेद्य हैं। वाल्मीकि रामायण की ही भाँति "जानकीहरण" में भी "सन्यासाश्रम" का जिसमें संसार से विरक्त हो लोक कल्याण की भावना प्रधान होती हैं- कहीं कोई संकेत नही मिलता। केवल "उत्तुंग जटामण्डित मस्तक" वाले आजीवक और मस्करिन् नामक बौद्ध भिक्षुओं का होना सूचित है।[७७] महाकवि ने "वानप्रस्थाश्रम के प्रव्यान" को अधिक विस्तार दिया है जिसमें ऋण त्रय से मुक्त होकर लोग लोक परलोक-साधन के प्रति सचेष्ट होते हैं। गृहस्थी की गाड़ी ढोते-ढोते जब गृहस्थ पलित केश, कृश शरीर और शिथिल इन्द्रियों वाला हो जाता है, उस समय अर्थ और काम के सक्रिय उपार्जन से विरत हो समर्थ पुत्र पर गृहस्थी का भार छोड़ वह पत्नी सहित वन में जाकर तपस्या में रत होता था। "यौवने

---

७७. जानकीहरणम् १०/७६ इ०सं० ।

वनिता वल्कल सन्ततिर्वार्धके च नः[७८] कथन से दशरथ के उक्त आश्रम में प्रवेश करने की इच्छा झलकती है।

महाकवि कुमारदास के समय संस्कारों पर अवश्य आस्था थी, किन्तु वर्णन-प्राया अभिरुचि के कारण कवि ने अधिक संस्कारों का वर्णन इसलिए अनावश्यक माना है क्योंकि सुन्दर वस्तु वर्णनों के साथ फिर वह न्याय न कर पाता। यह भी सम्भव है कि उस समय संस्कारों की संख्या परम सीमित हो। "जानकीहरण" में तीन मुख्य संस्कार ही वर्णित हैं जात कर्म,[७९] विवाह,[८०] और औध्र्वदैहिक कर्म।[८१]

आलोच्य युग में पर्वोत्सव मनाये जाते थे। सम्भवतः होलिकोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जाता था। जलकेलि-काल में गलितान्तरीया एक रमणी के नितम्बभाग पर दृष्टि जमाये राजा दशरथ के मुख पर तन्निवारणार्थ अपने हस्तरूपी "जलयंत्र" से उसके द्वारा जल प्रक्षेप का वर्णन किया गया है।[८२] बसन्त वर्णन के समय नव कुड्मलों

---

७८. वही १०/८,
७९. जानकीहरणम् ४/१,
८० वही १/२६,
८१ वही १०/६१,
८२ वही १०/६१,

से लदे मनोज्ञ-द्युति चम्पक वृक्षों की वनस्थली द्वारा नयस्त सहस्रदीप वाले "दीप वृक्ष" कहना[८३] सम्भवतः दीपावली की ओर संकेत करता है। विजयदशमी, रक्षाबन्धन आदि अन्य प्रमुख हिन्दू त्योहारों की ओर प्रस्तुत महाकाव्य में कोई संकेत नहीं मिलता।

रामायण काल में विवाह के पूर्व लड़कियों को शास्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों का पर्याप्त ज्ञान करा दिया जाता था, किन्तु ऐसी कोई सूचना "जानकीहरण" में नहीं मिलती। उसके स्थान पर संगीतादि ललित-कलाओं का सम्यक अभ्यास अवश्य करा दिया जाता था। विदाई में सीता को उसकी प्रिय वीणा का समर्पण[८४] उक्त कथन का प्रमाण है।

विवाहोपरान्त पितृ-गृह आकर कन्या "वधू" पद अवश्य पा जाती थी, किन्तु रामायणकालिक कौशल्य की भाँति वह अपने पति की दासी, सखी, पत्नी, बहन और माता[८५] सभी कुछ बनकर पति के समस्त हृदय एवं मस्तिष्क को अपने में केन्द्रीभूत कर लेने में सर्वथा असमर्थ

---

८३ वही ३/३.
८४ जानकीहरणम् ९/१५ इ०सं० ।
८५ रामायण २/१२/६८-६९.

रहती थी। वह सहधर्मचारिणी न बनकर कामपूर्ति का साधन मात्र बन पाती थी। पति के साथ मधुपान, उद्यान-विहार एवं जलक्रीड़ा आदि ही उसके जीवन का मानों चरम लक्ष्य था। वस्तुतः नारी की स्थिति एवं सत्ता गिराने में बहुपत्नी-प्रथा का भी हाथ था। राजा दशरथ की चार और रावण की अनेक रानियाँ थी। "जानकीहरण" मे अन्यत्र भी कई स्थलों पर सपत्नियों के प्रसंग आये हैं।[८६]

उस युग के मनुष्य विलासी और सकाम थे। पुरुष तो मद्य-प्रेमी थे ही, स्त्रियाँ भी मदिरा में भक्ति रखती थीं। "मदालसा" एवं "स्खलद्गिरा" प्रमदायें दशरथ को अपने अधिवासित "गण्डूषमधु" का पान कराती हुई वर्णित हैं।[८७]

वेश्यावृत्ति का चारों ओर जाल बिछा था। वेश्याओं को "कर्मशयत्नभोग्या" कहना यह सूचित करता है कि उनका बड़े यत्न पूर्वक और कर्कश बनकर ही भोग किया जा सकता था, सीधे-साधे व्यक्तियों को तो वे अपने व्यापार नैपुण्य से उल्लू बना देती थीं।[८८] तत्कालिक समाज में

---

८६ जानकीहरणम् ४/५८

८७ वही ३/६४-७० ।

८८ वही १/१८.

भ्रष्टाचार भी व्याप्त था। यौवन को "अविनयशाली" कहना इसका परिचायक है।[८९] उन दिनों चोरी डकैती सामान्य बात थी। केलि-कलह मे कैतव-प्रसुप्ता सीता पति द्वारा वस्त्र-विशेष के स्पृष्ट होते ही "चोर" कहकर चिल्ला पड़ी और तदनु उसका हास मुखरित हो उठा।[९०] इस कथन से चोर कर्म का संकेत मिलता है।

इसी प्रकार कुछ लोग स्वाभिमान परिबोधन हेतु भावशून्य विधि से उत्तेजित वचन कहकर अपने पालक को युद्ध में प्रवृत्त तो करा देते थे, किन्तु सहायता के समय अपने आश्वासनों के सर्वथा प्रतिकूल झांकने तक नहीं आते थे।[९१] किन्तु उससे कुछ ही पूर्व महाकवि भारवि के समय में यह सब न था। उस समय लोक भिन्न मति होने पर भी पारस्परिक वैमनस्य को छोड़कर प्राण परित्याग पूर्वक अपने आश्रयदाता के प्रिय कर्म करने की इच्छा रखते थे।[९२]

---

८९ वही ६/१५,

९० वही ८/८२,

९१. जानकीहरणम् १५/१२ इ०सं० ।

९२ "महौजसो मानधना. धनार्चिता:
धनुर्भृत: संयति लब्धकीर्तय·।
न संहतास्तस्य न भिन्न वृत्तय·
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभि: समीहितुम्।।"
किरातार्जुनीयम् १/१९ ।

धार्मिक स्थिति

महाकवि कुमारदास के समय का समाज वैदिक कर्मदाण्ड का अनुयायी था। उस समय पूजा-अर्चना, सन्ध्या वन्दन, यज्ञ हवन आदि का अत्यधिक प्रचलन था। देवी देवताओं एवं अरण्य देवताओं[९३] की प्रसन्नता के लिए बलि प्रदान की जाती थी। बलि क्रिया में पुष्प, लाजा, आदि का अर्पण किया जाता था क्योंकि कवि ने बल्यर्थ बिखेरी लाजा के गृहणार्थ समुपस्थित कीटों का वर्णन किया।[९४] मूर्ति पूजा का भी उन दिनों प्रचलन था। "महेन्द्रकल्प" राजा दशरथ की रानी कौसल्य की नखावली के विषय में महाकवि की कल्पना है कि मानों पूजा के लिए मुक्तावली उसके चरणान्त में विखेर दी गयी है।[९५] इससे प्रतिमाओं के चरणों पर फल-फूल-द्रव्यादि के समर्पण की झलक मिलती है। तात्कालिक पूजा विधि में "तीर्थ-जल" का सिंचन,[९६] "लाजा" की अग्नि में आहुति,[९७] "कपूर" "कृष्णागरुसार" एवं धूप का सन्दीपन,[९८] "दर्भ" का प्रयोग,[९९] "शंख तूर्यादि" मंगल वाद्य

---

९३ जानकीहरणम् ६/५ इ०सं० ।
९४ जानकीहरणम् ५/७ इ०सं०।
९५ वही १/२७,
९६ वही ७/३७,
९७ वही ७/५५,
९८ वही ७/३८,
९९ वही ७/४०,

वादन,[१००] आसन के लिए "कृष्णमृगाजिन" का व्यवहार,[१०१] आदि क्रिया कलाप अवलोकनीय हैं। किन्तु पूजा में पुष्पों के प्रयोग की कहीं कोई सूचना नहीं मिलती। "भू भक्ति" के हेतु पुष्पों का प्रयोग अवश्य होता था।[१०२]

उन दिनों व्रत धारणा करने में जाति प्रयुक्त कोई बाधा नहीं थी। कवि ने शूद्रमुनि श्रवण कुमार[१०३] और क्षत्रिय कुलोद्भुत कौशिक[१०४] के लिए समान रूपेण "व्रती" पद का प्रयोग किया है। उस समय आसवपान सर्वथा वर्जित था। विष्णु के तपस्या काल में उनका खड्ग "नन्दक" राक्षस-वक्ष निर्गत रुधिररूपी आसव में रुचि न लेकर "समित्कुशच्छेदनमात्रतत्पर" हो गया था।[१०५] सन्ध्या वन्दन के पूर्व स्नान करना आवश्यक माना जाता था। क्योंकि विश्वामित्र की जटाओं को "सन्ध्याविधिस्नानसंवर्धितरुच:" कहा गया है।[१०६] किन्तु इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि सन्ध्या विधि दिन मे कितनी बार और किस प्रकार की जाती थी।

---

१०० वही ७/३९.
१०१ वही ६/११.
१०२ वही २/६८.
१०३ जानकीहरणम् १/७९ इ०सं०।
१०४ वही ६/५.
१०५ वही ५/१६.
१०६ वही ६/२.

आलोच्य युग में तपोवन वासियों की तरह गृहस्थ भी यज्ञ करते थे। प्रत्युत यज्ञ करता गृहस्थ ही श्लाघनीय समझे जाते थे। कुमारदास ने "आहितक्रतु" जनक को "गृहिणां अग्रण्य" कहा है।[१०७] कवि ने यज्ञ की अग्नि को "परमार्थवहिन"[१०८] कहकर यज्ञ के निःश्रेयसप्राप्ति का अनुत्तम साधन होनें का डिमडिम घोष कर दिया है। कवि के समय में "बहुदेवता वाद" का प्रचलन प्रतीत होता है। तात्कालिक धार्मिक परस्परा विष्णु को सर्व प्रमुख देवता मानती थी। उन्हें लक्ष्मी के साथ शेषनाग की शैय्या पर स्थित एवं गरुड़ द्वारा सेवित कहा गया है तथा उनकी दो भुजाओं में "पांचजन्य" और "सुदर्शन" का होना वर्णित है।[१०९] विष्णु के बाद शिव का दूसरा स्थान था। ऐसा प्रतीत होता है कि नित्य सायंकाल उनकी आरती होती थी तथा भक्त जन दर्शन-प्रणामार्थ जाते थे। सम्भवतः इसीलिए कवि ने अकालघटित सन्ध्या को "गौरीपति-प्रणति-सम्भ्रम

---

१०७ वही ६/१,
१०८ जानकीहरणम् ७/५३, इ०सं०।
१०९ वही २/१-८,

निशाचिख्या" कहा है।[११०] इसके अतिरिक्त इन्द्र, वरुण, पवन, ब्रह्मा, अग्नि, चन्द्र, कुबेर, यमराज, स्कन्द, चण्डिका आदि का कवि ने वृहस्पति द्वारा उल्लेख कराया है।[१११]

कवि ने एक ओर युद्धस्थली में रक्त प्रवाहित करने वाले क्रूरकर्मा बहादुरों का चित्रण किया है तो दूसरी ओर ऐसे दयावान् अहिंसक व्यक्तियों का जो यज्ञ भवन में भूमि–कर्षण–लोभी कीट कुचल न जांय, इस भय से कुश निर्मित मार्जनी से उन्हें हटा देते हैं।[११२] अपनी गोद में शोये मृगशावक के जाग जाने की आशंका से पैर दुःखने पर भी आसन नहीं बदलते।[११३] इससे उनकी दया और अहिंसा की भावना प्रकट होती है।

---

११० वही ५/५८,
१११ वही २०/२९,
११२ जानकीहरणम् ५/७ इ०सं०।
११३ वही ५/४,

आर्थिक स्थिति

महाकवि कुमारदास के समय में राज्य की आय का प्रमुख साधन कर योजना थी। "कर" आवश्यक रूप से लगाये जाते थे। राम को राज-धर्मोपदेश देते समय दशरथ ने कहा है कि जो राजा "दण्ड" का आश्रय एवं "कर" का ग्रहण नहीं करता, वह शीघ्र अधोगति को प्राप्त करता है।[११४] एक स्थल पर तो स्पष्टतः राजा जनक द्वारा आढ्य जनों से कर लेकर निर्धनों का हित साधन करने का वर्णन किया गया है।[११५] इससे ध्वनित होता है कि केवल धनिकों से ही कर ग्रहण किये जाते थे।

आलोच्य युग में मनुष्यों के चार वर्ग थे। १-जग पालक २-स्वजन पालक ३-स्वयं का ही पालक ४-स्वयं के पालन में असमर्थ।[११६] इससे प्रकट होता है कि उस समय समृद्ध और निर्धन दोनों ही प्राप्य थे। फिर भी अधिकतर लोग धनाढ्य थे। भोग विलास सामग्रियों का उन दिनों इतना बाहुल्य था कि इनके चार से अयोध्या के स्वर्ग से सरक कर नीचे भू-लोक पर आ जाने की कवि ने कल्पना

---

११४ वही १०/३२,
११५ वही ६/३८,
११६, जानकीहरणम् ४/३३ इ०सं०।

कर डाली थी।[११७] कवि के समय में व्यजन,[११८] आतपत्र,[११९] यामघटी,[१२०] पटह,[१२१] आलम्बनदण्ड,[१२२] समुद्गपेटिका,[१२३] वितान,[१२४] रस्सी,[१२५] झाड़ू,[१२६] चामर,[१२७] आसन,[१२८] तल्प,[१२९] दीपक[१३०] आदि सुख सुविधायें विद्यमान थीं।

कवि के समय में आजीविका का सर्व सामान्य साधन कृषि था। रामायण काल की भाँति[१३१] उन दिनों प्रधान उपज धान की ही थी। धान वर्ष में दो बार उपजाया जाता था। - एक फसल शरत् काल में बोई जाती थी। जिसे "कलम" तथा दूसरी उस समय पककर तैयार हो जाती थी, जिसे शालि कहा जाता था।[१३२] शरदभ्र संचय को दिगंगनाओं द्वारा संचित तथा सुरेन्द्र चाप से विधूत तूल-राशि के रूप में

१११७ वही १/१,
११८ वही ३/६३, १०/८५,
११९ वही १०/५१, ११/४४,
१२० वही ७/४१,
१२१ वही ३/८०,
१२२ वही १/७६,
१२३ वही १/१५,
१२४ वही १/२५, ११/१९
१२५ वही ८/५७,
१२६ वही ५/७,
१२७ वही १०/८५,
१२८ वही ४/१७, ६/३२,
१२९ वही ६/३२
१३० वही २/५९, 3/3
१३१ जानकीहरणम् ६/४९ इ०सं०।
१३२ वही १२/२१

उत्प्रेक्षित करके कवि कपास की कृषि की ओर स्पष्ट संकेत किया है।[१३३] गन्ने को कवि ने "इक्षु" कहकर उसके क्षेत्रों को नदी तीरवर्ती बतलाया है।[१३४] इसे भी अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। केला,[१३५] आम,[१३६] आदि फलों तथा कमल,[१३७] कुमुद,[१३८], कुन्द,[१३९] करवीर[१४०] आदि पुष्पों, गज,[१४१] तुरंग,[१४२] गाय,[१४३] महिष,[१४४] भेड़ें,[१४५] आदि पशुओं, स्वर्ण, [१४६] रजत,[१४७] अयस,[१४८] आदि खनिज पदार्थों, लाल और नीलम,[१४९] पद्मराग,[१५०] मुक्ता,[१५१] प्रवाल,[१५२] वज्र[१५३] आदि विविधि रत्नों का वर्णन किया है।

---

१३३ वही १२/१४.
१३४ वही १०/५२.
१३५ वही ७/३१.
१३६ वही ३/१०.
१३७ वही १/३८.
१३८ वही १/२३.
१३९ वही ८/९१.
१४० वही ३/६.
१४१ वही १/६.
१४२ वही १/५३.
१४३ वही ९/२०.
१४४ वही १/५९.
१४५ वही २/४५.
१४६. जानकीहरणम् १/३, १/८ इ०रां०।
१४७ वही १/१२
१४८ वही १/६५.
१४९ वही ३/८.
१५० वही १/२४.
१५१ वही १/२७.
१५२ वही १/८.
१५३ वही २/६२.

महाकवि के समय में वाणिज्य व्यापार भी फल फूल रहा था। उस युग के कांची आदि नगर व्यापार के समृद्ध केन्द्र थे, जहाँ कि देश-देशान्तर से व्यवसायी व्यापारार्थ आया करते थे।[१५४] विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध होने के संकेत मिलते हैं। चीन देश से "चीनांशुक" का सम्भवतः आयात होता था।[१५५]

आलोच्य युग में स्थलमार्ग,[१५६] जलमार्ग,[१५७] एवं वायुमार्ग[१५८] सभी का प्रचलन था।

पारिवारिक स्थिति

कवि के समय में परिवार पितृ प्रधान थे। पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण अथवा कुलव्रत के पालन में लोगों की अटूट निष्ठा थी। विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा-हेतु प्रस्थित राम को दशरथ के अंकमाल पूर्व उपदेश दिया था कि -

---

१५४ वही १/१८,
१५५ वही १/४,
१५६, वही ९/१७,
१५७ वही १०/५५,
१५८ वही २०/१०,

"तव जीवति संशयेष्वपि न परित्याज्यमिदं कुलव्रतम्।"[१५९] उन दिनों संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। कहीं भी एकाकी परिवार अथवा विघटित परिवार का संकेत नहीं मिलता। बालि और सुग्रीव वैरवश अवश्य ही विलग होकर रहते थे, किन्तु बालि वध के बाद उसकी पत्नी तारा और पुत्र अंगद सुग्रीव के साथ आकर रहने लगे। दशरथ और रावण के संयुक्त परिवारों की सर्वथा श्लाघनीय है। स्त्रियाँ "चरित्रकुलोन्नता"[१६०] एवं "विधेया"[१६१] हुआ करती थीं, जो "पतिप्रसाद" को ही अपनी "उन्नति" मानती[१६२] भर्ता "परिकोपमायत" होने पर "मौन" रूपी साधन का आश्रय लेती,[१६३] एवं अपने "शील" से गुणस्पृह पति को वशंवद बना लेती थी।[१६४]

पुत्र प्राप्ति के लिए दान, तपस्या और यज्ञादि बड़े-बड़े उद्योग किये जाते थे। "जानकीहरण" में दशरथ पुत्र प्राप्ति इच्छा से सम्पूर्ण विभव द्विजसात करके यज्ञ करते हुए वर्णित है।[१६५] प्रथित तपोनिधि ऋष्य-शृङ्ग ने उनसे

---

१५९ जानकीहरणम् ४/४२, इ०सं०।
१६० वही १/४४,
१६१ वही १/२६,
१६२ वही ९/४,
१६३ वही ९/६,
१६४ जानकीहरणम् ९/७ इ०सं०।
१६५ वही ४/१,

पुत्रेष्टि यज्ञ भी कराया था। इसी प्रकार रामायणकालिक "नास्ति पुत्रसमः प्रियः प्रायेण नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषुवल्लभाः"[१६६] अथवा सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजभिषिच्यते"[१६७] आदि धारणायें यद्यपि वाचिक व्यवहार के रूप में "जानकीहरण" में उपलब्ध हैं तथापि घटनाओं का क्रम उनके अस्तित्व की सूचना देता है।

आलोच्य युग में बहुविवाह के प्रचलन से सपत्नियों के होने के संकेत भी मिलते हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में दशरथ और रावण ही,[१६८] बहु-पत्नी व्रत के धनी नहीं हैं, अपितु अन्यत्र भी सपत्नी की आशंका, रोष एवं ईर्ष्या के सुन्दर चित्रदृष्टिगोचर होते हैं। एक स्थल में पति द्वारा एकरमणी के लाक्षारस लगाते समय उस लालिमा के उसकी सपत्नी के नेत्रों से संक्रमित हो जाने का उल्लेख किया गया है।[१६९]

माता-पिता उन दिनों अपनी सन्तान के परम स्नेह एवं श्रद्धा के भाजन थे। शयन-काल में बच्चे बपने पिता के चरण दबाते थे। महाकवि ने "मात्र जनचोदित"

१६६, रामायण १/६१/१९
१६७ वही २/७३/१२
१६८ जानकीहरणम् क्रमशः तीसरा एवं सोलहवां सर्ग इ०रां०।
१६९ जानकीहरणम् ३/१८, इ०सं०।

रामादिक द्वारा अपने "सरोजशीतल" मृदुल करों से पिता के चरणयुगलों के संवाहन का संकेत किया है।[१७०] परिवार में पारस्परिक प्रेम की न्यूनता न थी तो कि आर्य संस्कृति का प्रधान संबल एवं उसकी उत्कृष्टता का प्रमुख रहस्य रहा है। सीता के गहगंमन से जनक का संतप्त होना,[१७१] और सीता द्वारा रो रोकर उनके चरणों को आद्र बनाना,[१७२] पिता पुत्री के प्रेम का परिचायक है। यह प्रेम ही था, जा पिता अपनी कन्या के लिए अच्छे से अच्छा वर चाहता था। जनक का मन साधु वर की प्राप्ति से संतुष्ट एवं प्रसन्न था।[१७३]

खान-पान एवं वेष-भूषा

कवि के समय में फलों का महत्वपूर्ण स्थान था। लोक केला, नारियल, और आम का अधिकाधिक प्रयोग करते थे। समुद्र-तट पर केला और नारियल बहुतायत से उगते भी हैं। कवि ने काम दहन शान्त्यर्थ वक्ष पर कदली के गर्भदल के विन्यास का उल्लेख किया है।[१७४] राम

---

१७० वही ४/१२,
१७१ वही ९/११,
१७२ वही ९/२,
१७३ वही ९/११,
१७४ जानकीहरणम् ७/३१, कु०सं०

लक्ष्मण सीता का भागीरथी के किनारे-किनारे "इक्षुशालकट" और शालेय क्षेत्रों को देखते हुए जाना,[१७५] कौशिक का जटाओं का "शालिकूकाग्रपिंगल" होना,[१७६] एवं केदारतलों में जल सूख जाने पर "शालि" का भी सूखकर पीला पड़ जाना,[१७७] इस बात का द्योतक है कि उन दिनों चावल लोगों का मुख्य आहार था। गायों की बड़ी संख्या में पाले जाने[१७८] से निर्विवाद प्रतीति होता है कि उस समय दुग्ध का भी भोजन में प्रमुख अंश होता था, किन्तु रामायण काल की तरह कपित्थ, क्षीर, गोरस, दधि और घृत आदि के प्रयोग[१७९] क कोई संकेत नहीं मिलता । आलोच्य युग में स्त्रियाँ भी मदिरा पान में आसक्ति रखती थीं। आसव पान करके उनका शरीर आलस्य से बोझिल हो उठता और वाणी स्खलित होने लगती थी।[१८०]

कवि के समय में तपस्वी लोग लम्बी-लम्बी जटायें रखते थे, जिनका प्रसाधन कभी नहीं किया जाता था। कौशक की जटायें "सन्ध्याविधि स्नान संवर्धित-रुचा"

---

१७५ वही १०/५२,
१७६, वही ६/२,
१७७ वही १२/५,
१७८ वही ९/२०,
१७९ रामायण क्रमशः २/९१/७२, २/३/१४, ३/११/७, १/५३/३ आदि।
१८० जानकीहरणम् ३/६९ कु०सं०।

और "शालिशूकाग्रपिंगला" कही गई है।[१८१] परशुराम की जटायें "आदित्य मयूख" के समान पिंगल थी तथा संस्कार-राहित्य से "वलित" (परस्पर गुथी हुई) हो गई थी।[१८२] तपस्वी के कान में किसी बीज-मालिका के लटकने का कवि ने संकेत किया है, जो सम्भवतः सुमरनी के रूप में प्रयुक्त होती थी। परशुराम की "श्रवणावसंगिनी", "विशुष्कपंकेरुह बीजमालिका" का उल्लेख[१८३] संग्राह्य है। यह सम्भावना की जा सकती है कि तपस्विगण उन दिनों कान में कुण्डल के स्थान पर कमल बीजों से बनी क्षुद्र-मल्लिका धारण करते थे। कवि के समय में उत्तरीय,[१८४] अन्तरीय,[१८५] कंचुक,[१८६] मुखपट,[१८७] कौशेयवसन[१८८] इत्यादि पट परिधान प्रचलित थे। इतना ही नहीं कवि के समय में ग्रीवाभूषण,[१८९] हस्ताभूषण,[१९०] पादाभूषण,[१९१] कट्याभूषण,[१९२]

---

१८१ वही ६/२,
१८२ वही ९/३०,
१८३ वही ९/२७,
१८४ वही २/४२,
१८५ वही ८/११,
१८६ वही ३/३६,
१८७ वही ११/४४,
१८८ वही ८/१२,
१८९ जानकीहरणम् २/१२, इ०सं०।
१९० वही २/१०,
१९१ वही ३/७,
१९२ वही १६/३२,

शिरोभूषण,[१९३] पुष्पाभूषण,[१९४] कर्णाभूषण,[१९५] के प्रचलित होने के संकेत मिलते हैं।

स्त्रियाँ अपने केशों में सुगन्धित तेल लगाती थीं अथवा उन्हें सुरभित करने के लिए किसी अन्य साधन का प्रयोग करती थीं, क्योंकि सन्ध्या होने पर सौध-पृष्ठ पर आसीन तथा मन्द पवन संचालित सुरभित केशवाली सीता से राम ने दृश्यमान प्रकृति का वर्णन करना प्रारम्भ किया था।[१९६] राम का यह कहना कि विष्णु ने उक्त आश्रय से ही अपने उलझे केशों को प्रसाधित करते हुए बलिवन्ध के लिए प्रस्थान किया था।[१९७] प्रकट करता है कि उन दिनों केशों को प्रसाधनी (कंघा आदि) से प्रसाधित किया जाता था।[१९८] सीता के लिए "सीमन्तनी" के पद के प्रयोग[१९९] से सहज सम्भावना की जा सकती है कि सीमंत (मांग) डालकर वेणी की रचना की जाती थी।[२००]

---

१९३ वही ३/८.
१९४ वही १/४७.
१९५ वही ९/५९.
१९६ वही ८/५५.
१९७ वही ५/२१.
१९८ तुल० रामायण २/९१/७७
१९९ जानकीहरणम् ६/५१.
२०० जानकीहरणम् कु०रा० तुल० रामायण ६/२२/७६, ।

आलोच्य युग में तिलक,[२०१] काजल,[२०२] पत्रभक्ति रचना,[२०३] सिन्दूर,[२०४] अंगराग,[२०५] अधररंजन,[२०६] नखरंजन,[२०७], करतलरंजन,[२०८] पदरंजन,[२०९] स्नान,[२१०] दर्पणादि[२११] शृङ्गार प्रसाधन के भी संकेत दृष्टिगोचर होते हैं।

आचार विचार एवं क्रीड़ा विनोद

महाकवि के समय में अतिथि सत्कार का अत्यन्त महत्व था। महाराज दशरथ में विश्वामित्र को "रत्नविष्टर" पर बैठाया था और स्वयं "भुवस्तल" पर बैठ गये इससे अतिथि के प्रति सम्मान की भावना प्रकट होती है। जनक ने उन्हें "सिंहचर्मोत्तरच्छद" युक्त विष्टर प्रदान किया था।[२१२] सेवक लोग स्वामी के पीछे-पीछे चला करते

---

२०१ वही ३/२२,
२०२ वही ८/४१, ३/५८,
२०३ वही ८/३९,
२०४ वही ५/५६,
२०५ वही ८/३६,
२०६, वही ३/२२, "ओष्ठद्युतिर्भाति न पाटलेयम्।"
२०७ वही ८/४, "वेधात्युरसि रागभिर्नखैः"
२०८ वही ९/६,३,
२०९ वही ३/१८, ३/५४,
२१० वही ६/२,
२११ वही ८/४२,
२१२ वही ६/३२,

थे। अपने पीछे चलते हुए "परिवार वर्ग" के मुड़-मुड़ कर सव्याज कुछ बातें करती हुई सीता आँख बचा-बचा कर राम पर कटाक्ष-प्रहार करती हुई वर्णित हैं।[२१३] "विधेया"[२१४] स्त्रियाँ ही शिष्ट समझी जाती थीं। उनसे आशा की जाती थी कि कहीं आते-जाते समय या वातायन से बाहर झांकने के पूर्व अपने गुरु जनों को सूचित करके उनकी अनुमति प्राप्त कर लें।[२१५] उन दिनों गुरुजनों के प्रति प्रबल सम्मान की भावना के दर्शन होते हैं। चित्रकूट में अपनी माता कैकेयी की निन्दा करते हुए भरत को राम ने रोंका और कहा कि "स्वयं स्वकृत-दोष से लज्जित गुरुजनों की कदापि निन्द नहीं करनी चाहिए विशेषकर उनकी उपस्थिति में।"[२१६]

आलोच्य युग में जल विहार,[२१७] उद्यान विहार,[२१८] मृगया,[२१९] पक्षिपालन,[२२०] द्वन्द्व युद्ध,[२२१] द्यूत क्रीड़ा,[२२२],

---

२१३ जानकीहरणम् ७/२१ कु०रा०,
२१४ वही १/२६,
२१५ वही ९/५२,
२१६ वही १०/६६,
२१७ वही ३/३२-६,१,
२१८ वही ३/१४,
२१९ वही १/४६-६३,
२२० वही ३/८०,

संगीत,[२२३] रति,[२२४] कन्दुक क्रीड़ा,[२२५] बाल-क्रीड़ायें[२२६] इत्यादि क्रीड़ा विनोद भी कवि के समय में प्रचलित थे।

कला, विज्ञान एवं शिक्षा

सूक्ष्म सत्ता (परमात्मा) के विभिन्न दार्शनिकों ने मुख्यतः तीन लक्षण स्वीकार किये हैं- सत्, चित् और आनन्द। मनुष्य उसी सूक्ष्म सत्ता का व्यक्त रूप है। मनुष्य का भी सूक्ष्म जीवन तीन बातों पर आधारित है- ज्ञान, भावना, क्रिया। इसमें ज्ञान का सम्बन्ध सत् से है, क्रिया का चित् से और भावना का आनन्द से। अत:परमात्मा के अनुरूप ही मानव जीवन में इन तीनों तत्त्वों की प्रमुखता है। मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न विषय इन्हीं तीनों प्रवृत्तियों से प्रेरित हैं। ज्ञान की प्रवृत्ति ने विज्ञान और दर्शन को, क्रिया की प्रवृत्ति ने धर्म और व्यवसाय को और भावना की प्रवृत्ति ने साहित्य और कला को जन्म दिया। यद्यपि

---

२२१ वही २/४,
२२२ वही १०/८७,
२२३ जानकीहरणम् ६/२९ इ०सं०।
२२४ वही अष्टम सर्ग ।
२२५ वही १/५४,
२२६ वही ४/८,

विज्ञान, व्यवसाय और कला तीनों का सम्बन्ध मानव जीवन से है, फिर भी तीनों के लक्ष्य में परस्पर गहरा अन्तर सिद्ध होता है, जहाँ विज्ञान का लक्ष्य सत्यम है, व्यवसाय का शिवम् वहाँ कला का सुन्दरम् है।

❑❑

संदर्भ ग्रन्थ या सहायक ग्रन्थ सूची

1. आचार्य भाल चन्द्र पाण्डेय जानकी हरण की भूमिका व्याख्याकार एवं सम्पादक
2. अचार्य दण्डी काव्यादर्श 1/14–19
3. आचार्य आनन्द वर्धन – ध्वन्यालोक ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी
4. आचार्य वामन – काव्यालंकार सूत्र वृत्ति आत्माराम एण्ड संस दिल्ली द्वारा प्रकाशित
5. आचार्य विश्वनाथ – साहित्य दर्पण हिन्दी व्याख्या सहित श्री पं0 शालग्राम शास्त्री, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली।
6. आचार्य बलदेव उपाध्याय – संस्कृत सुकवि समीक्षा चौखम्भा विद्या भवन वराणसी
7. आचार्य बलदेव उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास हिन्दू विश्वविद्यालय काशी
8. नाट्य शास्त्र गा0 ओ0 सी0 बड़ौदा 1926
9. वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास चौखम्भा विद्या भवन वराणसी 1960
10. वायु पुराण – आनन्दा श्रम पूना
11. वी0 वरदा चारी – ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, इलाहाबाद।
12. वी भट्टाचार्य – नाट्य दर्पण गा0ओ0सी0
13. व्यक्ति विवेक प्रथ विमर्श काशी संस्कृत सीरीज 121 (1936)
14. डा0 वैजनाथ पुरी – सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश।

15. डा0 मिरेण्डो तृतीय सचिव लंका दूतावास दिल्ली से प्राप्त 1972

16. डा0 कीथ/संस्कृत साहित्य का इतिहास सन 1960

17. डा0 कीथ संस्कृत साहित्य का इतिहास भाषान्तरकार – डा0 मंगल देव शास्त्री, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली 1960

18. डा0 एस0एन0 दास गुप्ता – ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, कलकत्ता 1947

19. सुवृत्त तिलकम् चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस बनारस सिटी स0 1984

20. साहित्य दर्पण पर श्री रामचरण तर्क वागीस भट्टाचार्य की विव्रत्ति टीका पर श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी की छाया नामक टिप्पणी पृष्ठ 402 निर्णय सागर प्रेस बम्बई

21. संस्कृत साहित्य विमर्श न्यू इण्डिया प्रेस नई दिल्ली 1956

22. रस गंगाधर – बद्रीनाथ झॉ बनारस 1955

23. राजशेषर प्रसाद चतुर्वेदी – श्रृंगार रस का शास्त्री विवेचन, सरस्वती पुस्तक सदन आगरा

24. राजशेषर – काव्य मिमांशा चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी 1934

25. प्रताप रुद्र यशोभूषण रस प्रकरण पृ0 221 राजकीय ग्रन्थ माला, 1901

26. पूजावती माबोपिठिय मेधकर धेर कोलम्बो 1932

27. पं0 सीताराम जाय राम जोशी – संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लक्ष्मी बुक डिपो कलकत्ता 1963

28. भवभूति – उत्तर रामचरितम

29. भिक्षु धमं रक्षित किताब महल इलाहाबाद सन् 1858 ई0

30. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली 1970

31. कुमार दास एण्ड हिज क्लेस इन संस्कृत लिटरेचर पूना 1908

32. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 5/1/5

33. काव्यालंकार सार संग्रह भा0ओ0ई0 पूना 1925

34. काव्यानुशासन अध्याय – 2

35. कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम्

36. बाण भट्ट – हर्ष चरित उच्छवास 7

37. इक्सपेन्शन ऑफ पल्लव रूल इन फारदर इण्डिया पृ0 5

38. धनन्जय – दशरूपक